नवमोऽध्यायः

ऋषिः—इन्द्राबृहस्पती। देवता—सविता। छन्दः—स्वराडार्षीत्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

इन्द्र+बृहस्पति

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य।
दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑तपूः॒ केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाजं॑ नः स्वदतु॒ स्वाहा॑॥१॥

गत अध्याय के अन्तिम मन्त्र में प्रभु से जीवन को पवित्र बनाने के लिए प्रार्थना की गई थी। उसी प्रार्थना को प्रकारान्तर से प्रस्तुत मन्त्र में करते हैं कि—१. हे **सवितः देव**=सबके प्रेरक, दिव्य गुणों के पुञ्ज अथवा प्रकाशमय प्रभो! **यज्ञं प्रसुव**=हममें यज्ञ की भावना को प्रेरित कीजिए। हमारा जीवन यज्ञशील हो। २. **यज्ञपतिम्**=यज्ञों के रक्षक को **भगाय**=ऐश्वर्य के लिए **प्रसुव**=प्रेरित कीजिए। अपने जीवन को यज्ञमय बनाता हुआ पुरुष ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाला हो। ३. **दिव्यः**=सदा प्रकाश में स्थित होनेवाला वह (दिवि भवः) **गन्धर्वः**=(गां धरति) वेदवाणी को धारण करनेवाला **केतपूः**=(केतं ज्ञानं पुनाति)=हमारे ज्ञानों को पवित्र करनेवाला प्रभु **नः**=हमारे **केतम्**=ज्ञान को **पुनातु**=पवित्र करे। ज्ञान की पवित्रता ही सब पवित्रताओं का मूल है। ज्ञान पवित्र होने पर वाणी पवित्र होती है और वाणी के पवित्र होने पर क्रियाएँ पवित्र होती हैं। 'विचार, उच्चार व आचार' यह क्रम है। विचार की पवित्रता शब्दों में आती है, वही क्रिया में। ४. **वाचस्पतिः**=वाणी का पति प्रभु **नः**=हमारे **वाजम्**=अन्न को **स्वदतु**=माधुर्यवाला करे। इस अन्न के माधुर्य पर वाणी व मन का माधुर्य निर्भर है। वस्तुतः बुद्धि का सौन्दर्य व पवित्रता भी इसी अन्न की मधुरता पर आश्रित है। ५. **स्वाहा**=इस ज्ञान की पवित्रता व अन्न के मधुर परिणाम के लिए मैं स्वार्थ का त्याग करूँ, स्वार्थ से ऊपर उठूँ। राजस् व तामस् भोजनों का चस्का छोड़ूँ। भोजन सात्त्विक होगा तो ज्ञान भी पवित्र होगा और वाणी भी माधुर्ययुक्त होगी। ६. 'वाज' शब्द का अर्थ शक्ति भी है। मेरी शक्ति मधुर हो, क्रूरता से ऊपर उठी हुई हो। शक्तिशाली बनकर मैं 'इन्द्र' बनूँ, ज्ञानी बनकर 'बृहस्पति'। इस प्रकार मैं मन्त्र का ऋषि 'इन्द्राबृहस्पती' होऊँ।

भावार्थ—हमारा ज्ञान पवित्र हो। हमारा अन्न व शक्ति मधुर हो।

ऋषिः—बृहस्पतिः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—आर्षीपङ्क्तिः[क], विकृतिः[ख]। स्वरः—पञ्चमः[क], मध्यमः[ख]॥

राजा

[क]ध्रु॒वस॑दं॒ त्वा नृ॒षद॑ं मन॒ःसद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम्। [ख]अ॒प्सु॒षद॑ं त्वा घृत॒सद॑ं व्यो॒म॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम्। पृ॒थि॒वि॒सद॑ं त्वाऽन्तरिक्ष॒सद॑ं दिवि॒सद॑ं देव॒सद॑ं नाक॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम्॥२॥

'पिछले मन्त्रों की भावना के अनुसार सबके जीवन बड़े सुन्दर हों' इसके लिए राजा का उत्तम होना आवश्यक है। वास्तव में राजशक्ति ही प्रजाओं में सब उत्तमताओं को लाने

का कारण बनती है, अतः प्रस्तुत मन्त्र में राजा का वर्णन करते हैं कि—१. **ध्रुवसदम्**=(ध्रुवम् यथा स्यात्तथा सीदतीति) ध्रुवता से अपने धर्मों में स्थित होनेवाले २. **नृषदम्**=(नृषु सीदति) मनुष्यों में अवस्थित होनेवाले, अर्थात् हर समय प्रजा-रक्षण के कार्य में तत्पर रहनेवाले, ३. **मनः सदम्**=अपने मन पर आसीन होनेवाले, अर्थात् अपने मन को पूर्णरूप से वश में करनेवाले ऐसे **त्वा**=तुझ राजा को **गृह्णामि**=हम ग्रहण करते हैं। हे राजन्! ४. **उपयामगृहीतः असि**=आप उपासना द्वारा यम-नियमों से स्वीकृत जीवनवाले हैं। **इन्द्राय त्वा**=आपको राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए स्वीकार करते हैं। **जुष्टम्**=आप प्रीतिपूर्वक राष्ट्र का सेवन करनेवाले हो। **एषः ते योनिः**=यह राष्ट्र ही तेरा घर है। **इन्द्राय**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए, **जुष्टतमम्**=सर्वाधिक प्रीति से राष्ट्र का सेवन करनेवाले **त्वा**=तुझे हम स्वीकार करते हैं। ५. **अप्सुषदम्**=सदा कार्यों में अवस्थित होनेवाले, अर्थात् सदा क्रियाशील **त्वा**=तुझे हम स्वीकार करते हैं। ६. **घृतसदम्**=(घृ क्षरणदीप्त्योः) मलों के क्षरण के द्वारा दीप्ति को लाने के कार्य में स्थित तुझे हम ग्रहण करते हैं। राजा का महत्त्वपूर्ण कार्य यही है कि वह प्रजा की मलिनताओं को दूर करे और उनके जीवन को उज्ज्वल बनाये। ७. **व्योमसदम्**=(व्योम्नि सीदति, व्योमन्=वी+ओम्+अन्=प्रकृति, परमात्मा व जीव) जो तू प्रकृति, परमात्मा व जीव तीनों में स्थित है। प्रजा की प्राकृतिक आवश्यकताओं [खान-पान] को पूर्ण करने का ध्यान करता है। उनकी वृत्ति को प्रभु-प्रवण बनाने का ध्यान करता है और जीवों के पारस्परिक व्यवहार को उत्तम बनाता है। ८. ऐसा यह राजा **उपयामगृहीतः असि**=उपासना द्वारा यम-नियमों को अपनानेवाला है। **इन्द्राय**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए हम **त्वा**=तुझे स्वीकार करते हैं। **जुष्टम्**=राष्ट्र का प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले तुझे **गृह्णामि**=ग्रहण करते हैं। **एषः ते योनिः**=यह राष्ट्र ही तेरा घर है। **इन्द्राय त्वा जुष्टतमम्**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए सर्वाधिक प्रीतिपूर्वक राष्ट्र की सेवा करनेवाले **त्वा**=तुझे हम स्वीकार करते हैं। ९. **पृथिविसदम्, अन्तरिक्षसदम्, दिविसदम्**=(पृथिवी=शरीरम्, हृदय=अन्तरिक्ष, मूर्धन्=द्यौः) शरीर, हृदय व मस्तिष्क में स्थित **त्वा**=तुझे ग्रहण करते हैं—तू शरीर, हृदय व मस्तिष्क तीनों का अधिष्ठाता है, तूने शरीर को स्वस्थ बनाया है, हृदय को निर्मल तथा मस्तिष्क को उज्ज्वल। १०. **देवसदम्**=तेरा उठना-बैठना सदा देवों के साथ है, अतः तुझे अपने व प्रजाओं के जीवन को दिव्य बनाना है। ११. **नाकसदम्**=(न+अक) तू आनन्दस्वरूप प्रभु में स्थित है। प्रातः-सायं तू प्रभु का स्मरण अवश्य करता है। यह प्रभु-स्मरण ही तुझे कर्त्तव्यमार्ग पर ध्रुवता से चलने की शक्ति देता है। ऐसे **त्वा**=तुझे हम ग्रहण करते हैं। १२. आप **उपयामगृहीतः असि**=उपासना द्वारा यम-नियमों से स्वीकृत जीवनवाले हो। **जुष्टम्**=प्रीतिपूर्वक राष्ट्र की सेवा करनेवाले **त्वा**=तुझे **इन्द्राय**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए **गृह्णामि**=ग्रहण करते हैं। **एषः ते योनिः**=यह राष्ट्र ही तेरा घर है। **जुष्टतमम्**=राष्ट्र का सर्वाधिक प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले **त्वा**=तुझे **इन्द्राय**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ—राजा ध्रुव वृत्तिवाला हो—मानव-कार्यों में ही रुचिवाला हो (हर समय शिकार ही न खेलता हो), अपने मन का अधिष्ठाता हो, सदा कार्यव्यापृत हो, मलों का क्षरण करके दीप्ति का लानेवाला हो। वह प्रजाओं की प्राकृतिक आवश्यकताओं का ध्यान करे, उन्हें प्रभु-प्रवण बनाये। उनके पारस्परिक व्यवहारों को उत्तम करे, शरीर, मन व मस्तिष्क तीनों का ध्यान करे, अच्छे पुरुषों के साथ उसका उठना-बैठना हो, प्रातः-सायं प्रभु का ध्यान करनेवाला हो।

ऋषिः—बृहस्पतिः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—निचृदतिशक्वरी। स्वरः—पञ्चमः॥

प्रजा में सर्वोत्तम

अपाꣳरसमुद्वयसꣳसूर्ये सन्तꣳसमाहितम्। अपाꣳरसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥३॥

१. गत मन्त्र में राजा का वर्णन था। प्रस्तुत मन्त्र में कहते हैं कि राजा किसे चुनें? जो **अपाम्**=प्रजाओं का **रसम्**=रस—सारभूत व्यक्ति हो—अर्थात् प्रजाओं में जो सर्वोत्कृष्ट हो। २. **उद्वयसम्**=उत्कृष्ट जीवनवाले को, अर्थात् राजा का चरित्र ऊँचा होना चाहिए, आयु के दृष्टिकोण से भी बड़ी आयुवाला ही ठीक है, क्योंकि इसे पर्याप्त अनुभव होगा। ३. **सूर्ये सन्तम्**=जो सदा प्रकाश में निवास करता है। पिछले मन्त्र में 'दिविषदं' शब्द इसी भावना को व्यक्त कर रहा था (दिवि=सूर्ये षदं=सन्तम्) ४. **समाहितम्**=एकाग्रचित्तवृत्तिवाले को। यही भावना 'ध्रुवसदम्' शब्द से पहले मन्त्र में कही गई थी। ५. **अपाम्**=प्रजाओं के **रसस्य यः रसः**=रस का भी जो रस है, अर्थात् जो प्रजाओं में सर्वोत्तम जीवनवाला हो **तम्**=उस तुझे **वः**=तुम्हारे लिए, प्रजाओं के हित के लिए **गृह्णामि**=ग्रहण करता हूँ। **उपयामगृहीतः असि**=तू उपासना द्वारा स्वीकृत यम-नियमोंवाला है। **जुष्टम्**=प्रीतिपूर्वक राष्ट्र की सेवा करनेवाले **त्वा**=तुझे **इन्द्राय**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए **गृह्णामि**=ग्रहण करता हूँ। **एषः**=यह राष्ट्र ही **ते योनिः**=तेरा घर है। **जुष्टतमम्**=राष्ट्र का सर्वाधिक प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले **त्वा**=तुझे **इन्द्राय**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ—राजा उसे चुना जाए जो १. प्रजाओं में सर्वोत्तम जीवनवाला हो २. कुछ बड़ी आयु का हो। ३. सदा प्रकाश में निवास करनेवाला हो। ४. एकाग्रचित्तवृत्ति का हो ५. राष्ट्र को ही अपना घर समझनेवाला और उसकी प्रीतिपूर्वक सेवा करनेवाला हो।

ऋषिः—बृहस्पतिः। देवता—राजधर्मराजादयः। छन्दः—भुरिक्कृतिः। स्वरः—निषादः॥

राजा व प्रजा

ग्रहाऽऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम्। तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जꣳसमग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम्॥४॥

१. राजा कहता है कि हे **ग्रहाः**=(ग्रहीतारः) उत्तमोत्तम वस्तुओं का ग्रहण करनेवाले गृहाश्रमियो! तुम २. **ऊर्जाहुतयः**=(ऊर्जं आह्वयन्ति) अन्न व रस का आह्वान करनेवाले हो। श्रम करते हुए प्रभु से अन्न व रस की याचना करते हो। ३. **विप्राय**=विशेषरूप से अपना पूरण करने के लिए **मतिम्**=बुद्धि को **व्यन्तः**=(गमयन्तः) अपने को प्राप्त कराते हो। ४. **वि-शिप्रियाणाम्**=विहीन जबड़ोंवाले, अर्थात् बहुत अधिक न खाने-पीनेवाले, खाने-पीने में आसक्त न हो जानेवाले **तेषाम्**=उन **वः**=आपके **इषम् ऊर्जम्**=अन्न व रस को **समग्रभम्**=सम्यक्तया ग्रहण करता हूँ। मनु के निर्देशानुसार **'धान्यानामष्टमो भागः'** आपके अन्नादि के आठवें भाग को मैं लेता हूँ। ५. प्रजा कहती है—हे राजन्! तू **उपयामगृहीतः असि**=उपासना द्वारा यम-नियम से स्वीकृत जीवनवाला है। **जुष्टम्**=राष्ट्र का प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले **त्वा**=तुझे **इन्द्राय**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए **गृह्णामि**=ग्रहण करती हूँ। **एषः ते**

योनिः=यह राष्ट्र ही तेरा घर है। **जुष्टतमम्**=राष्ट्र की सर्वाधिक प्रीतिपूर्वक सेवा करनेवाले **त्वा**=तुझे **इन्द्राय**=राष्ट्र के ऐश्वर्य के लिए ग्रहण करते हैं। ६. प्रजा राजा व रानी से कहती है कि **सम्पृचौ स्थः**=आप सदा अपने जीवनों को उत्तमताओं से संयुक्त करनेवाले हो। **मा**=मुझे भी **भद्रेण**=शुभ से **संपृक्तम्**=संपृक्त करो। **विपृचौ स्थः**=आप अपने को बुराइयों से अलग करनेवाले हो, **मा**=मुझे **पाप्मना**=पाप से **विपृङ्क्तम्**=अलग करो। वस्तुतः राजा का जीवन प्रजा के जीवन को अत्यधिक प्रभावित करता है। राजा उत्तम होगा तो प्रजा भी उत्तम होगी। राजा व्यसनी होगा तो प्रजा भी वैसी ही हो जाएगी।

भावार्थ—राजा प्रजाओं से उचित कर ग्रहण करे। अपने जीवन को उत्तम बनाता हुआ प्रजाओं के जीवन को भी उत्तम बनाये।

सूचना—ऊपर 'विशिप्रियाणाम्' शब्द इस भावना को सुव्यक्त कर रहा है कि प्रजाएँ अपनी विषयलोलुपता को बढ़ा लेती हैं तो उन्हें कर देना भारी प्रतीत होने लगता है। उनकी इन्द्रियाँ खाने-पीने के व्यसनों में नहीं फँसतीं तो वे कर देने में उत्साहवाली होती हैं।

ऋषिः—बृहस्पतिः। **देवता**—सविता। **छन्दः**—भुरिगष्टिः। **स्वरः**—मध्यमः॥

सेनापति व सम्प्रदाय-विहीन राज्य [Secular State]

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजꣳसेत्। वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म सावित्॥५॥

गत मन्त्रों में राष्ट्र के अन्दर की सुव्यवस्था का चित्रण है। उस सुव्यवस्था से प्रजाओं के जीवन भद्र से युक्त तथा अभद्र से वियुक्त हुए हैं। प्रस्तुत मन्त्र में बाह्य आक्रमण से राष्ट्र की रक्षा का विधान है। यह रक्षा का कार्य सेनापति पर निर्भर करता है, अतः सेनापति से कहते हैं कि—२. **इन्द्रस्य वज्रः असि**=तू राष्ट्र के ऐश्वर्य को बढ़ानेवाले राजा का वज्र है। वज्र की तरह शत्रुओं का छेदन करनेवाला है। ३. **वाजसाः**=(वाजान् संग्रामान् सनोति, सन्ध्वन्=win) तू संग्रामों को विजय करनेवाला है। **अयम्**=यह राजा **त्वया**=तेरे द्वारा **वाजम्**=संग्राम का **सेत्**=(सिनुयात्) प्रबन्ध करनेवाला हो, अर्थात् युद्ध का सारा प्रबन्ध आपके द्वारा ही राजा से किया जाए (षिञ् बन्धने)। ४. **वाजस्य**=संग्राम के **प्रसवे**=उत्पन्न होने पर **नु**=अब **वचसा**=वेदोपदिष्ट निर्देशों के अनुसार **मातरं महीम्**=हम अपनी मातृभूमि को **अदितिम् नाम**=निश्चय से अखण्डित **करामहे**=करते हैं, अर्थात् अधिक-से-अधिक त्याग करके अपनी मातृभूमि को शत्रु द्वारा छिन्न-भिन्न नहीं होने देते। ५. हमारा राष्ट्र ऐसा है कि **यस्याम्**=जिसमें **इदम्**=ये **विश्वं भुवनम्**=सब लोक **आविवेश**=प्रविष्ट हुए हैं, अर्थात् हमारे राष्ट्र में अन्य राष्ट्रों के लोगों को भी रहने की पूरी सुविधा है। 'यहाँ धर्मविशेष के माननेवाले लोग ही रह सकें', ऐसी बात नहीं है। यह राष्ट्र सभी मत वालों व सभी देशवालों को रहने की सुविधा प्राप्त कराता है। ६. **तस्याम्**=सबको निवास देनेवाली मातृभूमि में **सविता देवः**=सबका प्रेरक प्रभु **धर्म**=धारणात्मक कर्मों को **सावित्**=प्रेरित करे। धारणात्मक कर्मों को करना ही हमारा धर्म हो। हम निर्माण को धर्म समझें, तोड़-फोड़ को अधर्म। 'घर्म' पाठ हो तो अर्थ होगा यज्ञों को प्रेरित करे। हम यज्ञात्मक कर्मों में लगे रहें।

भावार्थ—सेनापति शत्रुओं के आक्रमण से राष्ट्र की रक्षा करे। युद्ध उपस्थित होने पर हम अपने राष्ट्र को खण्डित न होने दें। हमारे राष्ट्र में सभी के लिए स्थान हो और

निर्माणात्मक कर्मों को ही हम धर्म समझें।

ऋषिः—बृहस्पतिः। देवता—अश्वः। छन्दः—भुरिग्जगती। स्वरः—निषादः॥

आपः-अश्वः

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः।
देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनायं वाजꣳसेत्॥६॥

१. गत मन्त्र में शत्रु-आक्रमण से राष्ट्र की रक्षा का विषय वर्णित था। राष्ट्र-रक्षा के लिए वीर पुरुषों को जन्म देना माताओं का काम है, अतः कहते हैं कि **अप्सु अन्तः**=(आप् व्याप्तौ) निरन्तर कर्मों में व्याप्त—व्यस्त रहनेवाली (योषा वा अपः) स्त्रियों में ही **अमृतम्**= अमृत है, अर्थात् वे ही ऐसी सन्तानों को जन्म देती हैं जो असमय में रोगाक्रान्त होकर मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाती। **अप्सु**=इन निरन्तर क्रिया में व्याप्त, कर्मशील स्त्रियों में ही **भेषजम्**=औषध है, अर्थात् इनके सन्तानों को रोग नहीं सता पाते। इनके भोजन, रस व दूध में रोगकृमियों को नष्ट करने की शक्ति होती है। २. **उत**=और **अपाम्**=इन कर्मों में व्याप्त स्त्रियों के **प्रशस्तिषु**=प्रशस्त कार्यों में ही तुम **अश्वाः**=उत्तम वीर्यवान् (वीर्यं वा अश्वः), सदा कर्मों में व्याप्त रहनेवाले **वाजिनः**=शक्तिशाली व (वज गतौ) गतिशील **भवत** होवो, अर्थात् कर्मों में व्याप्त होनेवाली माताएँ शक्तिशाली, गतिशील सन्तानों को जन्म देती हैं। ३. **देवीः**=हे दिव्य गुणोंवाली **आपः**=उत्तम कर्मों में व्यापनेवाली माताओ! **यः**=जो **वः**=तुम्हारी **ऊर्मिः**=लहर—तरङ्ग व उत्साह है, **प्रतूर्तिः**=(प्रत्वरणः) वेग है तथा **ककुन्मान्**=शिखरवाला, शिखर पर पहुँचने की भावना है **तेन**=उससे **अयम् वाजसाः**=यह संग्रामों का विजय करनेवाला **वाजम् सेत्**=संग्राम का प्रबन्ध करे। माताएँ ऐसी ही सन्तानों को जन्म दें जो तरंगित हृदयोंवाले, अर्थात् उत्साहमय हृदयोंवाले, वेगवाले, न मरियल, शिखर तक पहुँचने की भावनावाले हों। ऐसी ही सन्तान राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ होगी।

भावार्थ—माताएँ वीर सन्तानों को जन्म देनेवाली हों।

ऋषिः—बृहस्पतिः। देवता—सेनापतिः। छन्दः—भुरिगुष्णिक्। स्वरः—ऋषभः॥

२७ गन्धर्व

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः।
तेऽअग्रेऽश्वमयुञ्जꣳस्तेऽअस्मिन् जवमादधुः॥७॥

१. राष्ट्र के सञ्चालन में सेनाओं को वायु-वेग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले-जानेवाला सेनापति **वातः**=है। वह सेनाओं को निरन्तर प्रेरणा दे रहा है। उत्तम मन्त्रणा करनेवाला मुख्यमन्त्री **'मनः'** है और **'त्रीणि राजाना विदथे पुरुणि'** इस मन्त्र में वर्णित 'राजार्य, धर्मार्य और विद्यार्य सभाओं' के दशावर अर्थात् नौ-नौ सभ्य, कुल मिलकर २७ सभ्य वेदवाणी का धारण करनेवाले होने से 'गन्धर्व' हैं (गां धरति)। २. **ते**=वे सेनापति, मुख्यमन्त्री तथा **सप्तविंशतिः**=सत्ताईस **गन्धर्वाः**=वेदों के धारण करनेवाले विद्वान् सभ्य—ये सब मिलकर **अश्वम्**=शक्तिशाली तथा निरन्तर कार्यों में व्याप्त होनेवाले राजा को **अग्रे**=सबसे अग्रस्थान पर **अयुञ्जन्**=नियुक्त करते हैं। वे इसे अपना मुखिया बनाते हैं। **ते**=वे ही **अस्मिन्**=इस अग्रस्थान पर स्थित होनेवाले राष्ट्रपति में **जवम्**=स्फूर्ति व गति को **आदधुः**=स्थापित करते हैं। उन्हीं के परामर्श के अनुसार ही यह कार्य करता है।

भावार्थ—राष्ट्र के मुख्य अधिकारी सेनापति, मुख्यमन्त्री, सभासद तथा राष्ट्रपति हैं।

ऋषिः—बृहस्पतिः। **देवता**—प्रजापतिः। **छन्दः**—भुरिक्त्रिष्टुप्। **स्वरः**—धैवतः॥

वातरंहाः

वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमानऽइन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसऽआ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु॥८॥

१. पिछले मन्त्र में कहा था कि 'सेनापति, मुख्यमन्त्री तथा सत्ताईस सभासद' राष्ट्रपति को नियुक्त करते हैं। अब वे कहते हैं—हे **वाजिन्**=शक्तिशालिन्! राष्ट्र के अग्रभाग में नियुक्त हुआ-हुआ तू **वातरंहाः**=वायु के समान वेगवाला **भव**=हो। राजा आलसी व विलासी होगा तो वह राष्ट्र की क्या रक्षा करेगा? २. **दक्षिणः**=कार्यकुशल बनकर तू **इन्द्रस्य इव**=इन्द्र के समान **श्रिया एधि**=श्री से सम्पन्न हो। राजा बिना कोश के राजा ही नहीं रहता। राजा को कोश की वृद्धि के लिए पूर्ण प्रयत्न करना है। कार्यकुशलता ही कोशवृद्धि में सहायक होगी। ३. **त्वा**=तुझे **मरुतः**=प्राणसाधना करनेवाले तथा **विश्ववेदसः**=सम्पूर्ण ज्ञानवाले पुरुष **युञ्जन्तु**= विभिन्न कार्यों में युक्त करें, अथवा ऐसे पुरुषों के साथ तेरा मेल हो। तेरे अध्यक्षादि सब प्राणापान के अभ्यासी व ज्ञानी हों। प्राणसाधना उनके इन्द्रिय-दोषों का दहन करनेवाली होगी तथा ज्ञान उनको ठीक तरीके से काम करने के योग्य बनाएगा। राजा को मूर्ख अध्यक्ष मिल जाएँ तो राष्ट्रसहित उसका नाश ही कर देंगे। ४. **त्वष्टा**=देवशिल्पी, अर्थात् तेरे राष्ट्र के वैज्ञानिक कारीगर **ते पत्सु**=तेरे पाँव में **जवम्**=वेग को **आदधातु**=स्थापित करे, अर्थात् तेरे लिए इस प्रकार का वाहन (Motor car) बना दे कि तू शीघ्रता से राष्ट्र के एक भाग से दूसरे भाग में पहुँच सके।

भावार्थ—१. राजा वायु के समान वेगवाला हो, शीघ्रता से कार्य करनेवाला हो। २. वह कार्यकुशलता से श्री की वृद्धि करे। ३. उसके अध्यक्ष ज्ञानी व प्राणायाम के अभ्यासी हों। ४. राष्ट्र सर्वत्र गमन-आगमन के लिए उसके वाहन वेगयुक्त हों।

ऋषिः—बृहस्पतिः। **देवता**—वीरः। **छन्दः**—धृतिः। **स्वरः**—ऋषभः॥

गुहा-श्येन-वात (बृहस्पति के भाग का गन्धोपादन)

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तोऽअचरच्च वाते।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳसरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत॥९॥

१. हे **वाजिन्**=बल-सम्पन्न व क्रियाशील राजन्! **यः**=जो **ते जवः**=तेरा वेग **गुहा**=बुद्धि में **निहितः**=स्थापित है, **यः**=जो तेरा वेग **श्येने**=(श्यैङ् गतौ) क्रियाशीलता में व शत्रुओं पर बाज़ की भाँति झपट्टा मारने में **परीत्तः**=स्थापित है (परिदत्तः परितो वा) **च**=और जो तेरा वेग **वाते**=वायु में, अर्थात् वायु के समान राष्ट्र के सब भागों में विचरने में **अचरत्**=गतिवाला होता है, **तेन**=उस बुद्धि में, शत्रु पर आक्रमण करने में तथा वायुवत् सम्पूर्ण राष्ट्र में भ्रमण करने में परिणत होनेवाले **बलेन**=बल से **बलवान्**=बलवाला **वाजिन्**=क्रियाशील तू **नः**=हमारे लिए **वाजजित् भव**=सब प्रकार के अन्नो व बलों को जीतनेवाला हो **च**=और **समने**=युद्ध में **पारयिष्णुः**=हमें पार लगानेवाला हो। २. इस मन्त्रार्थ में यह स्पष्ट है कि राजा का वेग तीन जगह प्रकट हो (क) शासन के अर्थों के उद्देश्य को

समझने में, (ख) शत्रु पर श्येनवत् आक्रमण करके शत्रु को समाप्त करने में तथा (ग) राष्ट्र के सब भागों के निरीक्षण में। ऐसा राजा ही राष्ट्र के अन्नादि के अभाव को दूर करेगा और युद्ध में शत्रुओं का शातन करने में समर्थ होगा। ३. इन राजकार्य-व्यापृत लोगों के लिए कहते हैं कि तुम (क) **वाजिनः**=(वज गतौ) ख़ूब क्रियाशील बनो (ख) **वाजजितः**=संग्रामों को जीतनेवाले बनो (ग) **वाजम् सरिष्यन्तः**=अन्न की ओर चलनेवाले होओ, अर्थात् राष्ट्र में कभी अन्नादि की कमी न होने दो (घ) ऐसा करते हुए तुम **बृहस्पतेः**=उस ब्रह्मणस्पति—वेदवाणी के पति परमात्मा की **भागम्**=(भज सेवायाम्) भजनीय, सेवनीय—इस वेदवाणी को भी **अवजिघ्रत**=ज़रा सूँघो, उसकी गन्ध का भी ग्रहण करो, अर्थात् ज्ञान-प्राप्ति के लिए थोड़ा-सा समय अवश्य निकालो। शूरता के साथ ज्ञान का सम्पुट आवश्यक है, अन्यथा शूरता कुछ बर्बरता को लिये हुए हो जाती है।

भावार्थ—राजा शूर हो, उसकी शूरता विद्वत्ता के मिश्रणवाली हो। ज्ञानपूर्वक वह राष्ट्र-शत्रुओं का दमन करनेवाला हो।

ऋषिः—बृहस्पतिः। **देवता**—इन्द्राबृहस्पती। **छन्दः**—विराडुत्कृतिः। **स्वरः**—षड्जः॥

ज्ञानी व जितेन्द्रिय का स्वर्ग

देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳरुहेयम्।
देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकꣳरुहेयम्।
देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम्।
देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम्॥१०॥

१. राजा के शासन के उत्तम होने पर राष्ट्र स्वर्गतुल्य बन जाता है। उस राष्ट्र में मूर्ख व अज्ञानियों का निवास नहीं होता, अतः वह स्वर्ग 'बृहस्पति' का कहलाता है तथा इसमें कोई भी व्यक्ति अजितेन्द्रिय नहीं होता, अतः यह 'इन्द्र' का स्वर्ग होता है। मन्त्र में कहते है कि—२. **अहम्**=मैं **सवितुः देवस्य**=प्रेरक प्रभु की, जो **सत्यसवसः**=सदा सत्य की ही प्रेरणा देते हैं **सवे**=प्रेरणा में, अनुज्ञा में **बृहस्पतेः**=बृहस्पति के **उत्तमं नाकम्**=उत्कृष्ट स्वर्ग को **रुहेयम्**=आरुढ़ होऊँ। बृहस्पति का स्वर्ग वह है जहाँ योग्यतम आचार्यों का निवास है। ३. **अहम्**=मैं **सत्यसवसः**=उस सत्य-प्रेरणावाले **सवितुः देवस्य**=प्रेरक प्रभु की **सवे**=प्रेरणा में **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **उत्तमं नाकम्**=उत्कृष्ट स्वर्ग में **रुहेयम्**=आरुढ़ होऊँ। 'इन्द्र' का स्वर्ग वह है जहाँ कि सब पुरुष 'जितेन्द्रिय' हैं, जहाँ अजितेन्द्रियों का निवास नहीं। ४. 'आरुढ़ होऊँ' इस प्रकार की कामना ही क्यों करता रहूँ—बस, अब तो मैं 'आरूढ़ हो ही गया'। दृढ़ संकल्प का यह परिणाम होना ही चाहिए कि वह संकल्प क्रिया में परिणत हो जाए, अतः यहाँ कहते हैं कि 'आरूढ़ हो जाऊँ, नहीं बस आरूढ़ हो ही गया'। ५. **अहम्**=मैं **सत्यप्रसवसः**=सत्य की उत्कृष्ट प्रेरणावाले **सवितुः देवस्य**=प्रेरक प्रभु की **सवे**=अनुज्ञा में **बृहस्पतेः**=बृहस्पति के **उत्तमं नाकम्**=उत्कृष्ट स्वर्ग में **आरुहम्**=आरूढ़ हुआ हूँ और **सत्यप्रसवसः**=उस उत्कृष्ट प्रेरणावाले **सवितुः देवस्य**=प्रेरक प्रभु की **सवे**=प्रेरणा में मैं **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय के **उत्तमं नाकम्**=उत्कृष्ट स्वर्ग में **अरुहम्**=आरूढ़ हुआ हूँ। ६. मन्त्रार्थ से ये बातें स्पष्ट हैं कि (क) स्वर्ग 'बृहस्पति व इन्द्र' का है, अर्थात् ज्ञानी व जितेन्द्रिय का है। स्वर्ग में पहुँचने के लिए हम जितेन्द्रिय व ज्ञानी बनें। जितेन्द्रयता व ज्ञान ही हमारे

घर व जीवन को स्वर्ग बनाते हैं। (ख) जितेन्द्रिय व ज्ञानी बनने के लिए प्रभु की प्रेरणा में चलें। (ग) जीवन को स्वर्ग बनाने का संकल्प दृढ़ होगा तभी हम इसे स्वर्ग बना पाएँगे।

भावार्थ—हम सब प्रभु के निर्देशानुसार चलनेवाले हों। ज्ञानी व जितेन्द्रिय बनें और इस प्रकार हमारा जीवन 'स्वर्ग' हो।

ऋषिः—बृहस्पतिः। **देवता**—इन्द्राबृहस्पती। **छन्दः**—जगती। **स्वरः**—निषादः॥

बृहस्पते+इन्द्र

बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत।
इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत॥११॥

१. गत मन्त्र के अनुसार राष्ट्र की उत्तमता इस बात पर निर्भर है कि प्रत्येक व्यक्ति ज्ञानी व जितेन्द्रिय बनने का प्रयत्न करे। विशेषतः राजा व सेनापति—जो राष्ट्र के मुख्य अधिकारी हैं, उन्हें तो ज्ञानी व जितेन्द्रिय बनना ही चाहिए। ये जितेन्द्रिय होंगे तभी शत्रुओं पर विजय पा सकेंगे। २. **बृहस्पते**=हे ज्ञान के अधिपति राजन्! **वाजं जय**=तू संग्राम को जीतनेवाला बन। ३. इन उल्लिखित शब्दों में राजा को विजय की प्रेरणा देकर पुरोहित उपस्थित सब सभ्यों से भी कहता है कि **बृहस्पतये**=इस ज्ञान के स्वामी राजा के लिए तुम सब भी **वाचं वदत**=उत्साह की वाणी को कहो। 'अवश्य जीतना है' इस प्रकार राजा को उत्साहित करो। **बृहस्पतिम्**=इस ज्ञानी राजा को **वाजं जापयत**=संग्राम में विजय दिलाओ। वस्तुतः राष्ट्र के सभी व्यक्ति राजा की पीठ पर हों तभी विजय सम्भव है। ४. अब पुरोहित सेनापति को सम्बोधित करते हुए कहता है कि **इन्द्र**=हे शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले! तू **वाजम्**=संग्राम को **जय**=जीत। हे प्रजाओ! तुम भी **इन्द्राय**=इस सेनापति के लिए **वाचं वदत**=उत्साह की वाणी बोलो। **इन्द्रं वाजं जापयत**=इस प्रकार उत्साह की वाणी को बोलते हुए तुम इस इन्द्र को अवश्य युद्ध में विजय दिलाओ।

भावार्थ—१. राजा को ज्ञानी बनना है, सेनापति को पूर्ण जितेन्द्रिय बनकर शत्रुओं को जीतना है। २. प्रजा ने राजा व सेनापति को उत्साहित करना है। ३. वस्तुतः विजय प्रजा को ही दिलानी होती है। प्रजा साथ है तो विजय है, प्रजा साथ न दे तो विजय का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

ऋषिः—बृहस्पतिः। **देवता**—इन्द्राबृहस्पती। **छन्दः**—स्वराडतिधृतिः। **स्वरः**—षड्जः॥

सत्या संवाक्

एषा वः सा सत्या संवाग्भूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्। एषा वः सा सत्या संवाग्भूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्॥१२॥

१. पुरोहित सभ्यों से कहता है कि तुम लोगों ने राजा के लिए जो उत्साह की वाणी कही है **एषा**=यह **वः**=तुम्हारी **सा**=वह **संवाक्**=उत्तम वाणी **सत्या**=सत्य **अभूत्**=हुई है। वह वाणी **यया**=जिससे कि **बृहस्पतिम्**=ज्ञान के अधिपति राजा को **वाजम्**=संग्राम को **अजीजपत**=तुमने जिताया है। हे **वनस्पतयः**=ज्ञान की रश्मियों के अधिपतियो! तुमने उत्साह का सञ्चार करनेवाली वाणी के द्वारा **बृहस्पतिम्**=इस ज्ञानी राजा को **वाजम्**=संग्राम में

अजीजपत=विजय प्राप्त कराई है। अब तुम शत्रुओं के उपद्रवों से जनित क्लेशों से **विमुच्यध्वम्**=मुक्त हो जाओ। जब तक युद्ध रहता है या शत्रुओं का उपद्रव बना रहता है तब तक कुछ-न-कुछ क्लेश बना ही रहता है। २. **एषा सा**=यह वह **वः**=तुम्हारी **संवाक्**=उत्तम वाणी **सत्या अभूत्**=सत्य हुई है **यया**=जिससे आपने **इन्द्रम्**=सेनापति को **वाजं अजीजपत**=संग्राम में विजयी किया है। हे **वनस्पतयः**=ज्ञानरश्मियों के अधिपति सभ्यो! आपने अपनी उत्साहमयी वाणी से **इन्द्रम्**=सेनापति को **वाजम्**=संग्राम में **अजीजपत**=विजय प्राप्त कराई है। परिणमतः **विमुच्यध्वम्**=अब तुम्हारा जीवन क्लेशों से मुक्त हो गया है। ३. राष्ट्र में जब सभ्य ज्ञानी होते हैं और राजा व सेनापति के साथ उनकी अनुकूलता होती है तब अवश्य विजय होती है और राष्ट्र विविध क्लेशों व अशान्तियों से मुक्त हो जाता है।

भावार्थ—युद्ध के समय सब सभ्यों का राष्ट्रपति व सेनापति के साथ पूर्ण सहयोग आवश्यक है। संकटकाल में विरोधी वाणी मानस शक्ति को नष्ट करने का कारण बनती है।

ऋषिः—बृहस्पतिः। **देवता**—सविता। **छन्दः**—निचृदतिजगती। **स्वरः**—निषादः॥

लक्ष्य-प्राप्ति (काष्ठा-गमन)

देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम्।
वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥१३॥

१. **अहम्**=मैं **सत्यप्रसवसः**=सत्य की उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाले **सवितुः देवस्य**=सविता देव की, प्रेरक प्रभु की **सवे**=प्रेरणा में, अनुज्ञा में, **वाजजितः**=संग्रामों को जीतनेवाले **बृहस्पतेः**=ज्ञानी राजा के **वाजम्**=संग्राम को **जेषम्**=जीतूँ। राष्ट्र के एक-एक व्यक्ति की भावना यही होनी चाहिए कि वह प्रभु-अनुज्ञा में चलता हुआ राजा का पूरा सहयोग दे और उस राजा को किसी भी युद्ध में पराजित न होने दे। २. पुरोहित इन राष्ट्र-वीरों को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि **वाजिनः**=हे शक्तिसम्पन्न राष्ट्रवीरो! **वाजजितः**=संग्रामों को जीतनेवालो! **अध्वनः स्कभ्नुवन्तः**=विघ्नों के मार्गों को रोकते हुए अथवा शत्रुओं के मार्गों को निरुद्ध करते हुए, अर्थात् काम-क्रोधादि के वशीभूत न होनेवाले तुम **योजना मिमानाः**=उन्नति की योजनाओं को बनाते हुए **काष्ठां गच्छत**=अपने लक्ष्य तक पहुँचो। ३. राष्ट्र के प्रत्येक प्रमुख पुरुष को शक्ति-सम्पन्न बनना है (वाजी), संग्राम में विजयी होना है (वाजजित्), काम-क्रोधादि उन्नति के विघ्नभूत शत्रुओं को अपने तक नहीं पहुँचने देना (अध्वनः स्कभ्नुवन्तः), जीवन को एक प्रोग्राम के साथ चलाना है (योजना मिमानाः)। यही लक्ष्यस्थान पर पहुँचने का उपाय है, अन्यथा मनुष्य पराजित होगा और जन्म-मरण के चक्र में ही फँसा रहेगा।

भावार्थ—हम विजयी बनें। विजय के लिए प्रभु की अनुज्ञा में चलें।

ऋषिः—दधिक्रावा। **देवता**—बृहस्पतिः। **छन्दः**—जगती। **स्वरः**—निषादः॥

त्रिधा बद्ध=(राजा)

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽआसनिं।
क्रतुं दधिक्राऽअनु सꣳसनिष्यदत्पथामङ्कांश्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥१४॥

प्रस्तुत मन्त्र में राजा के त्रिविध संयम का और परिणामतः विजय का उल्लेख करते हुए कहते हैं—१. **एषः स्यः**=यह जो **वाजी**=शक्तिशाली राजा **क्षिपणिम्**=शत्रुओं को सुदूर

प्रक्षेपण की क्रिया को **तुरण्यति**=(त्वरयति) शीघ्रता से करता है। 'क्या अन्तःशत्रु और क्या बाह्य शत्रु' यह उन सभी को अपने से दूर फेंकता है। २. यह राजा **ग्रीवायाम्**=ग्रीवा के विषय में **बद्धः**=तीव्र नियम में बद्ध होता है, अर्थात् इसका खान-पान बड़े संयम से चलता है। २. **कक्षे अपि**=कमरे में भी यह **बद्धः**=बड़े संयमवाला होता है, अर्थात् इसके सन्तानोत्पादनादि क्रिया में पूर्ण संयम रहता है। ४. **आसनि**=यह मुख में भी **बद्धः**=संयमवाला होता है। इसका बोलना भी बड़ा नपा-तुला होता है। संक्षेप में इस राजा का खान-पान, सन्तानोत्पादन, बोल-चाल सभी क्रियाओं में संयम दीखता है। ५. **दधिक्रा**=(दधत् क्रामति) राष्ट्र का धारण करता हुआ गति करनेवाला यह राजा **क्रतुं अनु**=संकल्प के अनुसार **संसनिष्यत्**=(स्यन्दू प्रस्रवणे) विविध क्रियाओं में प्रस्तुत होता है। इसका प्रत्येक कार्य संकल्पपूर्वक (पूर्वनिर्मित योजना के अनुसार) होता है, इसीलिए इस राजा का कोई कार्य ऐसा नहीं होता जो धारणात्मक न हो। ६. यह राजा **पथाम्**=शास्त्र-निर्दिष्ट मार्गों के **अङ्कांसि**=चिह्नों के **अनु**=अनुसार **आ**=सर्वथा **पनीफणत्**=खूब ही गति करता है, अर्थात् यह शास्त्र-निर्दिष्ट मार्ग से रेखामात्र भी विचलित नहीं होता। पूर्वजों के पदचिह्नों पर ही चलता है। ७. **स्वाहा**=इस राजा के लिए ही प्रशंसात्मक शब्द कहे जाते हैं (सु+आह)।

भावार्थ—१. राजा को शत्रुओं को दूर करने के कार्य में आलस्य नहीं करना। २. त्रिविध संयम का जीवन बिताना है। ३. इसका कोई भी कार्य असंकल्पित व अधारणात्मक नहीं होता। ४. शास्त्र-निर्दिष्ट मार्गों के चिह्नों पर ही यह चलता है।

ऋषिः—दधिक्रावा। **देवता**—बृहस्पतिः। **छन्दः**—जगती। **स्वरः**—निषादः॥

राजा का रथ

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः।
श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा॥१५॥

१. राष्ट्ररक्षा में व्यापृत राजा प्रजा के अन्दर अपने रथ से सर्वत्र विचरता है **उत**=और **अस्य**=इस **द्रवतः**=गति करते हुए **तुरण्यतः**=शत्रुओं का संहार करते हुए राजा का **पर्णम्**=रथ (सर्वं स्याद् वाहनं यानं युग्यं पत्रं च धोरणम्। पत्रम्=पर्णम्) **प्रगर्धिनः वेः**=मांसादि में लालचवाले (गृध्र आदि) पक्षी के **पर्णं न**=पंख के समान **अनुवाति**=गति करता है। जिस प्रकार मांस का लोभ पक्षी के पंखों को तीव्र गति देता है उसी प्रकार राष्ट्ररक्षा अथवा राष्ट्र को उत्तम बनाने का लोभ इस राजा के रथ को तीव्र गति देता है। ('पर्ण' शब्द के दोनों ही अर्थ हैं—रथ और पंख)। 'राष्ट्ररक्षा' की प्रबल कामनावाले राजा का रथ सदा तीव्र गति से इधर-से-उधर दौड़ा करता है। २. **ध्रजतः श्येनस्य इव**=शिकार पर आक्रमण करनेवाले बाज़ के समान इस राजा का रथ शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला होता है। ३. **ऊर्जा सह**=बल और प्राणशक्ति के साथ **तरित्रतः**=शत्रुओं को तीर्ण करनेवाले इस **दधिक्राव्णः**=(दधत् क्रामति) राष्ट्र का धारण करते हुए गति करनेवाले राजा का रथ **अङ्कसं परि**=वेदानुमोदित मार्गचिह्नों पर ही गति करता है। इसका रथ कभी मार्गभ्रष्ट नहीं होता। ४. इस राजा के लिए **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहे जाते हैं।

भावार्थ—शत्रुसंहार करनेवाले तथा राष्ट्ररक्षा करनेवाले राजा का रथ प्रजाओं में व राष्ट्र में सर्वत्र गति करनेवाला होता है।

ऋषिः—वसिष्ठः। देवता—बृहस्पतिः। छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः। स्वरः—पञ्चमः॥

'अहि-वृक-रक्षस्' जम्भन

शन्नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः।
ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॑ वृक॒ꣳरक्षा॑ꣳसि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः॥१६॥

१. 'राष्ट्रपति की अध्यक्षता में काम करनेवाले राजपुरुष कैसे हों', इस बात का वर्णन करते हुए कहते हैं कि १. **वाजिनः**=ये शक्तिशाली राजपुरुष **हवेषु**=हमारी प्रार्थनाओं पर (पुकारों पर) **नः**=हमारे लिए **शम्**=शान्ति व सुख प्राप्त करानेवाले **भवन्तु**=हों। २. **देवताताः**=(देवान् तन्वन्ति इति) वे राजपुरुष दिव्य गुणों का विस्तार करनेवाले हों। ३. **मितद्रवः**=ये नपी-तुली गतिवाले हों, प्रत्येक कर्म में युक्तचेष्ट हों। ४. **स्वर्काः**=(सु अर्च्) ये प्रभु के उत्तम उपासक हों। ज्ञानी ही तो सर्वोत्तम उपासक है, अतः ये ज्ञानी बनें और प्रभु की उपासना करनेवाले हों। ५. ये राष्ट्र में **अहिम्**=सर्प के समान कुटिल गति को **वृकम्**=भेड़िये के समान अत्यधिक खाने की वृत्ति को तथा **रक्षांसि**=अपने रमण के लिए औरों का क्षय करने की वृत्ति को **जम्भयन्तः**=(नाशयन्तः—म०) नष्ट करते हुए ६. **सनेमि**=शीघ्र ही (सनेमि=क्षिप्रम्—म०) **अस्मत्**=हमसे **अमीवाः**=रोगों व व्याधियों को **युयवन्**=दूर करें। ७. राज्य की व्यवस्था ऐसी सुन्दर होनी चाहिए कि उसमें धूर्तता, कुटिलता, ठगी (अहि), लोभ व उदरम्भरिता (वृक) तथा औरों की हानि करके मौज मारने की वृत्ति (रक्षस्) का नितान्त अभाव हो और लोग व्याधियों के शिकार न हों।

भावार्थ—राज्य वही ठीक है १. जिसमें 'अहि, वृक व रक्षसों' का अभाव है। २. जिसमें लोग स्वस्थ हैं। ३. और जिसमें लोगों की चित्तवृत्ति शान्त है। इस व्यवस्था को लाने के लिए राष्ट्रपुरुष वे होने चाहिएँ जो शक्तिशाली, दिव्य गुणों का विस्तार करनेवाले, नपी-तुली गतिवाले तथा उत्तम उपासक हैं।

ऋषिः—नाभानेदिष्ठः। देवता—बृहस्पतिः। छन्दः—जगती। स्वरः—निषादः॥

उपासना व युद्ध

ते नो॒ऽअर्व॑न्तो हवन॒श्रुतो॒ हव॒ं विश्वे॑ शृण्वन्तु वा॒जिनो॑ मि॒तद्र॑वः।
स॒हस्र॑सा मे॒धसा॑ता सनि॒ष्यवो॑ म॒हो ये धन॑ꣳसमि॒थेषु॑ जभ्रि॒रे॥१७॥

राजपुरुषों का ही प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि १. **ते**=वे **विश्वे**=सब **नः**=हमारी **हवम्**=प्रार्थना व पुकार को **शृण्वन्तु**=सुनें, **ये**=जो (क) **अर्वन्तः**=(अर्व हिंसायाम्) शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं, क्या बाह्य व क्या आन्तर—सभी शत्रुओं को वशीभूत करनेवाले हैं (ख) **हवनश्रुतः**=प्रजा के आह्वान को सुननेवाले हैं (ग) **वाजिनः**=शक्तिशाली व ज्ञानी हैं (घ) **मितद्रवः**=नपी-तुली गतिवाले हैं, प्रत्येक कर्म में युक्तचेष्टावाले हैं (ङ) **सहस्रसाः**=सहस्रों देनेवाले हैं, अर्थात् अत्यन्त उदार हैं (च) **मेधसातौ**=(मेधः सन्यते यत्र यज्ञशाला—म०) यज्ञशालाओं में **सनिष्यवः**=(पूजयितारः) आत्मा की उत्तम भक्ति करनेवाले तथा जो (छ) **समिथेषु**=संग्रामों में **महः धनम्**=(महत्—द०) बड़े धन का **जभ्रिरे**=भरण व पोषण करते हैं २. राजपुरुष जहाँ यज्ञशालाओं में प्रभु का पूजन करते हैं वहाँ संग्रामों में प्रभूत धन का विजय भी करते हैं। वस्तुतः यज्ञशालाओं में प्रभु-उपासन द्वारा अपने में शक्ति भरकर ही ये संग्रामों में शत्रुओं को जीतकर धनों के विजेता बनते हैं। ३. राजपुरुषों की राज्य-व्यवहार में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये प्रजा की पुकार को उपेक्षित नहीं करते। ४. अपने निज

जीवन में ये कामादि शत्रुओं का संहार करनेवाले (अर्वन्तः), शक्तिशाली (वाजिनः) तथा युक्तचेष्ट होते हैं (मितद्रवः)। कर्मों में युक्तचेष्टता ही इनकी विजय का सबसे बड़ा रहस्य है।

भावार्थ—राजपुरुष कामादि शत्रुओं के विजेता, शक्तिशाली व युक्तचेष्ट हों। वे उपासना की प्रवृत्तिवाले तथा संग्रामों में धनों के विजेता हों।

ऋषिः—वसिष्ठः। **देवता**—बृहस्पतिः। **छन्दः**—निचृत्त्रिष्टुप्। **स्वरः**—धैवतः॥

मधुपान—आर्थिक स्थिति का ठीक करना

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥१८॥

राजपुरुष क्या करें? १. हे **वाजिनः**=शक्तिशाली पुरुषो! **नः**=हमें **वाजेवाजे**=प्रत्येक संग्राम में **अवत**=सुरक्षित करो। संग्राम के समय इस प्रकार की व्यवस्था की जाए कि आम जनता के कार्य अव्यवस्थित न हो जाएँ। २. **धनेषु**=धनों के विषयों में तुम **विप्राः**=विशेषरूप से हमारा पूरण करनेवाले होओ। राजा व्यापार के नियम इस प्रकार के प्रचलित करे कि सारी प्रजा धनधान्य से परिपूर्ण हो। राज्य में शिल्पों को राज्य द्वारा प्रोत्साहन व संरक्षण मिले। ३. ये राजपुरुष **अमृताः**=नाना प्रकार के रोगों के शिकार न हों (मृत्यु=रोग)। ४. **ऋतज्ञाः**=ऋत के ये जाननेवाले हों, इनका अपना जीवन ऋतमय हो। इनकी दिनचर्या बड़ी व्यवस्थित हो। ५. **अस्य मध्वः पिबत**=इस सोमरूप मधु का ये पान करें और **मादयध्वम्**=आनन्दित हों। जिस प्रकार विविध पुष्प-रसों का सारभूत मधु=शहद होता है उसी प्रकार नाना ओषधियों का सारभूत सोम (वीर्य) शरीर के अन्दर उत्पन्न होता है। इस सोम का ये पान करनेवाले हों। ऐसे ही राजपुरुष प्रजा के रक्षण-कार्यों में शक्त होते हैं। ६. **तृप्ताः**=ये सदा तृप्त और सन्तुष्ट हों, इन्हें सदा भूख न लगती रहे। अतृप्त राजपुरुष ही रिश्वत आदि की ओर झुकाववाले होते हैं। और ७. ये सदा **देवयानैः पथिभिः यात**=देवयान मार्गों से चलें। राजपुरुष उत्तम मार्गों को ही अपनाएँ, ये देवताओं के चलने योग्य मार्गों से चलेंगे तो प्रजा भी देवयानमार्गानुयायिनी होगी। **'यथा राजा तथा प्रजा'**=प्रजा तो राजाओं के ही मार्गों को अपनाती है।

भावार्थ—राजपुरुष नीरोग, व्यवस्थित जीवनवाले, सोम के रक्षक, सदा तृप्त तथा उत्तम मार्गों से चलनेवाले हों। ऐसे ही राजपुरुष संग्रामों में विजेता बनकर प्रजा के रक्षक होते हैं तथा प्रजा की आर्थिक स्थिति को ठीक कर पाते हैं।

ऋषिः—वसिष्ठः। **देवता**—प्रजापतिः। **छन्दः**—निचृद्धृतिः। **स्वरः**—ऋषभः॥

पूर्ण-शोधन

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे।
आ मा गन्तां पितरा मातरा च मा सोमोऽअमृतत्त्वेन गम्यात्।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः॥१९॥

राष्ट्र में राजा तथा सारे प्रजाजन धर्माचरण द्वारा यही कामना करें कि—१. **मा**=मुझे **वाजस्य**=ज्ञान व शक्ति का **प्रसवः**=ऐश्वर्य **अजगम्यात्**=सब प्रकार से प्राप्त हो। २. मुझे **इमे**=ये **विश्वरूपे**=पूर्णरूपवाले न कि अधूरे **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क व शरीर **आ**=प्राप्त हों। ज्ञान के ऐश्वर्य के परिणामस्वरूप मेरा मस्तिष्क पूर्ण विकासवाला तथा शक्ति के

ऐश्वर्य के परिणामरूप मेरा शरीर नीरोग व पूर्ण होगा। ज्ञान मस्तिष्क की अपूर्णता को दूर करेगा तो शक्ति शरीर की अपूर्णता को। ३. **मा**=मुझे **पितरा मातरा**=सच्चे अर्थों में माता और पिता **आगन्ताम्**=प्राप्त हों। मेरे माता व पिता प्रशस्त हों, विद्यायुक्त होते हुए वे मेरे जीवन का सुन्दर निर्माण करनेवाले हों। ४. **च**=और **मा**=मुझे **सोमः**=सोम (=वीर्य) **अमृतत्वेन**=नीरोगता के साथ **आगम्यात्**=प्राप्त हो। मैं सोम की रक्षा करनेवाला बनूँ और इस प्रकार नीरोग होऊँ। (५) उल्लिखित प्रार्थना को सुनकर प्रभु कहते हैं कि (क) **वाजिनः**=शक्तिशाली व ज्ञानी होते हुए **वाजजितः**=तुम संग्रामों को जीतनेवाले बनो। काम-क्रोधादि शत्रुओं से तुम्हें पराजित नहीं होना है। (ख) **वाजं ससृवांसः**=शक्ति की ओर चलनेवाले तुम **बृहस्पतेः**=ब्रह्मणस्पति परमात्मा की **भागम्**=भजनीय वेदवाणी को **अवजिघ्रत**=अवश्य ग्रहण करो। ज्ञान की गन्ध से शून्य शक्ति राक्षसी व हानिकर हो जाती है। (ग) ज्ञान व शक्ति प्राप्त करके तुम **निमृजानाः**=निश्चय से अपना शोधन करनेवाले बनो।

भावार्थ—हम शक्तिशाली व ज्ञानी बनें। शरीर व मस्तिष्क को पूर्ण करें। उत्तम माता-पितावाले हों। सोम-रक्षा द्वारा नीरोग बनें। शक्ति की ओर चलनेवाले हम ज्ञान की गन्ध का भी ग्रहण करें और इस प्रकार अपने जीवन को शुद्ध बनाएँ।

ऋषिः—वसिष्ठः। **देवता**—प्रजापतिः। **छन्दः**—भुरिक्कृतिः। **स्वरः**—निषादः॥

प्रजापति

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳ शिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा॥ २०॥

'राजा कैसा हो?' इस प्रश्न का विस्तृत विचार देखिए—१. **आपये**=राष्ट्र को (आपयति) उत्तम समृद्धि प्राप्त करानेवाले राजा के लिए **स्वाहा**=(सु आह) उत्तम शब्दों को कहते हैं। २. **स्वापये**=(सु आपये) राष्ट्र के सर्वोत्तम मित्रभूत राजा के लिए **स्वाहा**= हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। ३. **अपिजाय**=(अपि=निश्चयार्थे जन्=विकास) निश्चय से राष्ट्र का विकास करनेवाले के लिए **स्वाहा**=उत्तम शब्द कहे जाते हैं। ४. **क्रतवे**=ज्ञान, संकल्प व कर्म से युक्त राजा के लिए **स्वाहा**=उत्तम शब्द कहते हैं। ५. **वसवे**=सब प्रजाओं को उत्तमता से बसानेवाले राजा के लिए **स्वाहा**=हम उत्तम शब्द कहते हैं। ६. **अहर्पतये**=प्रकाश के पति, अर्थात् सूर्य के समान राष्ट्र में प्रकाश फैलानेवाले राजा के लिए **स्वाहा**=हम उत्तम शब्दों को कहते हैं। ७. **मुग्धाय**=सुन्दर **अह्ने**=दिनों के कारणभूत राजा के लिए **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। सुन्दर दिन वे ही हैं जिनमें सारा राष्ट्र सुख-समृद्धि-सम्पन्न होता है। आजकल की भाषा में इसे ही शानदार समय=glorious period कहते हैं। ८. **मुग्धाय**=राष्ट्र को सुन्दर बनानेवाले **वैनंशिनाय**=बुराइयों का नाश करनेवाले के लिए **स्वाहा**=प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। ९. **विनंशिने**=सब बुराइयों को समाप्त करनेवाले, चोरी इत्यादि को दूर करनेवाले, और इस प्रकार **आन्त्यायनाय**=सब असमृद्धि का अन्त करनेवाले राजा के लिए **स्वाहा**=हम प्रशंसा के शब्द कहते हैं। १०. **आन्त्याय**=सब बुराइयों का अन्त करनेवाले **भौवनाय**=सब भुवनों=प्राणियों का हित करनेवाले राजा के लिए **स्वाहा**=हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। ११. **भुवनस्य पतये स्वाहा**=राष्ट्र की रक्षा करनेवाले राजा के लिए हम शुभ शब्द कहते हैं। १२. **अधिपतये स्वाहा**=राष्ट्र के सबसे मुख्य अधिष्ठाता के लिए हम

शुभ शब्द बोलते हैं।

भावार्थ—उल्लिखित १२ गुणों से युक्त प्रजापति ही श्रेष्ठ है।

ऋषिः—वसिष्ठः। **देवता**—यज्ञः। **छन्दः**—अत्यष्टिः। **स्वरः**—गान्धारः॥

यज्ञ और शक्ति

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम ॥२१॥

गत मन्त्र के अनुसार जब राजा राष्ट्र की उत्तम व्यवस्था करता है तब सब लोगों के जीवन उत्तम बनते हैं और वे चाहते हैं कि १. **आयुः**=हमारा जीवन **यज्ञेन**=यज्ञ से **कल्पताम्**=(क्लृप् सामर्थ्ये) शक्तिशाली बने। हमारे जीवन में (क) **देवपूजा**=बड़ों का आदर हो। (ख) **सङ्गतीकरण**=हम सब परस्पर मेल से चलनेवाले हों। (ग) **दान**=हममें देने की वृत्ति सदा बनी रहे (यज् देवपूजा-सङ्गतीकरण-दानेषु)। ये बातें हमारे जीवन में शक्ति का सञ्चार करनेवाली हों। २. **प्राणः**=हमारी प्राणशक्ति **यज्ञेन**=यज्ञियवृत्ति से **कल्पताम्**=वृद्धि को प्राप्त हो। यज्ञियवृत्ति में त्याग का अंश है, यह त्याग हमें विलास से बचाता है और विलास का अभाव हमारी प्राणशक्ति को पुष्ट करता है। प्राणशक्ति के पुष्ट होने पर हमारे सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग—सब इन्द्रियाँ सशक्त होती हैं, अतः कहते हैं कि ३. **चक्षुः**=हमारी दृष्टिशक्ति **यज्ञेन कल्पताम्**=यज्ञ से सशक्त हो तथा ४. **श्रोत्रम्**=हमारे कान **यज्ञेन कल्पताम्**=यज्ञ से शक्तिशाली हों। ५. **पृष्ठम्**=हमारी पृष्ठ (पीठ) **यज्ञेन कल्पताम्**=यज्ञ से शक्तिशाली बने। ६. **यज्ञः**=हमारा यज्ञ भी **यज्ञेन**=यज्ञिय भावना से **कल्पताम्**=सफल हो। लोकहित के लिए किये गये कर्म यज्ञ हैं। ये कर्म भी सङ्गरहित होने पर और फल की इच्छा को छोड़कर किये जाने पर अत्यन्त उत्तम हो जाते हैं। यही यज्ञों को यज्ञिय भावना से करने का आशय है। देवों के यज्ञ इसी प्रकार के होते हैं। ७. यज्ञ से अपने जीवनों को ओत-प्रोत करते हुए हम **प्रजापतेः**=प्रजाओं के रक्षक प्रभु के **प्रजाः**=सच्चे सन्तान **अभूत्**= हों। प्रभु ने प्रजाओं को यज्ञ के साथ ही उत्पन्न किया था और कहा था कि इसी से तुम फूलो-फलोगे, अतः इन यज्ञों को करनेवाला व्यक्ति प्रभु का सच्चा पुत्र होता है। यह अपने यज्ञादि सुचरितों से प्रभु को प्रीणित करता है। ८. इस प्रकार यज्ञों से हमारा जीवन दिव्य गुणों की वृद्धिवाला हो और **देवाः**=हे देवो! दिव्य गुणो! **स्वः अगन्म**=हम स्वर्ग को, सुखमय स्थिति को प्राप्त हों। अथवा उस स्वयं देदीप्यमान ज्योति प्रभु को प्राप्त करनेवाले हों। और ९. **अमृताः अभूम**=हम रोगरूप मृत्युओं से कभी आक्रान्त न हों।

भावार्थ—१. यज्ञों से हमारा जीवन शक्ति-सम्पन्न बनता है। २. यदि यज्ञ को यज्ञिय भावना से करते हैं तो हम प्रभु के सच्चे पुत्र होते हैं। ३. हमारा जीवन सुखमय व नीरोग होता है अथवा हम ऐहिक व आमुष्मिक कल्याण प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—वसिष्ठः। **देवता**—दिशः। **छन्दः**—निचृदत्यष्टिः। **स्वरः**—गान्धारः॥

यज्ञमय जीवन

अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाꣳसि सन्तु वः। नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२॥

गत मन्त्र की यज्ञियवृत्ति को ही प्रस्तुत मन्त्र में स्पष्ट करते हैं—१. **वः**=तुम्हारी **इन्द्रियम्**=सब इन्द्रियों की शक्ति **अस्मे**=हमारे लिए **अस्तु**=हो। प्रभु कहते हैं कि तू सब इन्द्रियों को हमारे प्रति अर्पण करनेवाला बन। २. तुम्हारा **नृम्णम्**=धन **अस्मे**=हमारे लिए हो। प्रभु के लिए होने का अभिप्राय स्पष्ट है कि वह 'सर्वभूतहित' के लिए विनियुक्त हो। 'सर्वभूतहिते रतः' व्यक्ति ही प्रभु का सच्चा भक्त है। **उत**=और **क्रतुः**=तुम्हारी प्रज्ञा व कर्म हमारे लिए हो। ३. **वः**=तुम्हारी **वर्चांसि**=शक्तियाँ **अस्मे**=हमारे लिए **सन्तु**=हों। तुम्हारी शक्तियाँ स्वार्थ-सम्पादन में विनियुक्त न होकर सारे राष्ट्र के हित के लिए हों। ४. तुम **मात्रे पृथिव्यै नमः**=इस पृथिवी माता का आदर करनेवाले होओ। **मात्रे पृथिव्यै नमः**=इस भूमि माता के लिए तुम्हारा नमन हो। **इयम्**=यह भूमिमाता ही **ते राट्**=तेरे सब कार्यों को नियमित (regulated) करनेवाली हो, अर्थात् तेरे सब कार्य मातृभूमि के हित के दृष्टिकोण से हों। ५. **यन्ता असि**=तू अपने इस शरीररूप रथ का उत्तम नियन्ता=काबू में रखनेवाला है। ६. तू **यमनः**=उद्यमशील है। ७. **ध्रुवः असि**=तू स्थिर चित्तवृत्तिवाला है। ८. तू **धरुणः**=धारणात्मक कर्मों में लगा हुआ है। ९. **कृष्यै त्वा**=मैं तुझे कृषि के लिए प्रेरित करता हूँ और **क्षेमाय त्वा**=इसे कृषि के द्वारा कल्याण-प्राप्ति में लगाता हूँ। यह कृषि ही तेरे जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन होगी। १०. **रय्यै त्वा**=मैं तुझे धन के लिए प्राप्त कराता हूँ और इस प्रकार **पोषाय त्वा**=तुझे उचित प्रकार से पोषण में समर्थ करता हूँ। संक्षेप में यह कृषि ही तेरे क्षेम के लिए होगी और पोषण के लिए पर्याप्त धन हो जाएगा।

भावार्थ—१. यज्ञमय जीवन में हमारी इन्द्रियाँ, धन, प्रज्ञा व कर्म, और सब शक्तियाँ पृथिवी माता के लिए होती हैं। (२) हमारा जीवन संयमवाला व धारणात्मक कर्मों में लगा हुआ होता है। (३) हम कृषि द्वारा क्षेम को सिद्ध करते हैं और पोषण के लिए पर्याप्त धन प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—वसिष्ठः। **देवता**—प्रजापतिः। **छन्दः**—स्वराट्त्रिष्टुपः। **स्वरः**—धैवतः॥

राष्ट्र-पुरोहित

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳराजानमोषधीष्वप्सु।
ताऽअस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳराष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा॥२३॥

१. **इमं सोमं राजानम्**=इस सौम्य गुणयुक्त अथवा सोमशक्ति-सम्पन्न राजा को, **अग्रे**=सबसे प्रथम **ओषधीषु अप्सु**=ओषधियों व जलों का ही खान-पान करने पर, अर्थात् भोजन में मद्य-मांसादि का प्रवेश न होने पर, **वाजस्य**=शक्ति व ज्ञान का **प्रसवः**= उत्पादन **सुषुवे**=ऐश्वर्ययुक्त करता है, अर्थात् सात्त्विक भोजन से सौम्यता बनी रहती है और शक्ति व ज्ञान में वृद्धि होती है। २. **ताः**=वे ओषधियाँ व जल **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **मधुमतीः**= माधुर्यवाली **भवन्तु**=हों, अर्थात् इन ओषधियों व जलों के खान-पान से हमारे मनों और व्यवहार में माधुर्य हो। ३. **वयं पुरोहिताः**=हम पुरोहित **राष्ट्रे**=राष्ट्र में **जागृयाम**=सदा जागरूक रहें। ज्ञान-प्रकाश फैलाने का कार्य इनपर ही निर्भर है। ये सो जाएँ, तो राष्ट्र में अन्धकार-ही-अन्धकार हो जाए। एवं, ये राष्ट्र-पुरोहित वानस्पतिक भोजन करनेवाले हों, इनके व्यवहार में अत्यन्त माधुर्य हो, इनके प्रभाव से राजा व प्रजा के जीवन में भी मद्य-मांसादि का प्रवेश न हो और राजा को शक्ति व ज्ञान का ऐश्वर्य प्राप्त हो। ५. **स्वाहा**=इस कार्य के लिए पुरोहित स्वार्थ के त्यागवाले हों।

भावार्थ—हम वानस्पतिक भोजन को ही अपनाते हुए शक्ति व ज्ञान के ऐश्वर्य का सम्पादन करनेवाले हों। हमारा व्यवहार अत्यन्त मिठास को लिये हुए हो। मांसाहार मनोवृत्ति को क्रूर बनाता है।

ऋषिः—वसिष्ठः। **देवता**—प्रजापतिः। **छन्दः**—जगती। **स्वरः**—निषादः॥

समृद्धि=Prosperity

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳसर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा॥२४॥

१. गत मन्त्र के अनुसार राजा व पुरोहितों के सात्त्विक होने पर **इमाम्**=इस भूमि-माता (राष्ट्र) को **वाजस्य**=शक्ति व ज्ञान का **प्रसवः**=ऐश्वर्य **शिश्रिये**=आश्रय करता है। सारा राष्ट्र शक्ति-सम्पन्न होता है, इसमें सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश होता है तथा २. **सम्राट्**=राजा **दिवम्**=प्रकाश का **शिश्रिये**=आश्रय करता है **च**=और **इमा**=इन **विश्वा**=सब **भुवनानि**=लोकों की **शिश्रिये**=(श्रिञ् सेवायाम्) सेवा करता है। राजा अपना मुख्य कर्त्तव्य लोकसेवा समझता है। वह सम्राट् है, राष्ट्र का सबसे बड़ा सेवक। ३. **प्रजानन्**=उत्कृष्ट ज्ञानवाला होता हुआ यह **अदित्सन्तम्**=राज-कर आदि देने की इच्छा न करते हुए से कर **दापयति**=दिलाता है। यह राष्ट्र में ऐसी व्यवस्था करता है कि सब कोई अपना कर-भाग अवश्य देता रहे। देय कर से कोई बच न सके। ४. **सः**=ऐसा वह राजा **नः**=हमें **सर्ववीरम्**=सब वीरों को प्राप्त करानेवाला **रयिम्**=धन **नियच्छतु**=दे, अर्थात् राजा हमें ऐसा धन प्राप्त कराए, जिस धन से हमारे सन्तान वीर हों तथा उस धन को प्राप्त करके हम विलासग्रसित व क्षीणशक्ति न हो जाएँ। हमारा अङ्ग-प्रत्यङ्ग वीरता से पूर्ण बना रहे। ५. **स्वाहा**=वीरता से पूर्ण बनाने के लिए सब राष्ट्रवासी स्वार्थ को त्याग करनेवाले हों।

भावार्थ—राष्ट्र-व्यवस्था ऐसी सुन्दर हो कि सारा राष्ट्र शक्ति व ज्ञान से सुशोभित हो। समझदार राजा ऐसी व्यवस्था करे कि कोई भी कर आदि देने में गड़बड़ न करे। राष्ट्र के सभी व्यक्ति वीर व धन-सम्पन्न हों। मन्त्र में 'सर्ववीर' शब्द को क्रियाविशेषण रक्खें तो अर्थ होगा, धन का इस प्रकार नियमन करें कि धन कहीं केन्द्रित न हो जाए और सभी वीर=समर्थ बने रहें।

ऋषिः—वसिष्ठः। **देवता**—प्रजापतिः। **छन्दः**—स्वराट्त्रिष्टुप्। **स्वरः**—धैवतः॥

'प्रजा-पुष्टि'-वर्धन

वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः।
सनेमि राजा परियाति विद्वान्प्रजां पुष्टिं वर्धयमानोऽअस्मे स्वाहा॥२५॥

१. राज्य-व्यवस्था के उत्तम होने पर गत मन्त्र की भावना के अनुसार जब कर आदि देने में कोई किसी प्रकार की ढील नहीं करता तब **नु**=निश्चय से **वाजस्य**=शक्ति व ज्ञान का **प्रसवः**=ऐश्वर्य **इमा च विश्वा भुवनानि**=इन सब लोकों में **सर्वतः**=सब ओर से—सब दृष्टिकोणों से **आबभूव**=उपस्थित होता है, अर्थात् राज्यव्यवस्था के उत्तम होने पर राष्ट्र के सभी लोग—राष्ट्र के सब प्रान्तों में निवास करनेवाली प्रजाएँ—शरीर, मन व बुद्धि सभी दृष्टिकोणों से उन्नत होती हैं। २. इस राष्ट्र का **विद्वान्**=ज्ञानी—प्रजा की ठीक-ठीक अवस्था को जाननेवाला **राजा**=राष्ट्र का व्यवस्थापक पुरुष **सनेमि**=(नेमि=परिधि) सदा मर्यादानुकूल आचरणवाला होता हुआ **परियाति**=राष्ट्र में चारों ओर गति करता है। **'स**

ताननुपरिक्रामेत् सर्वानेव सदा स्वयम्'=इस मनुवाक्य के अनुसार यह राष्ट्र के सब कर्मचारियों के कार्यों को स्वयं घूमकर देखा करता है। ३. इस नियमित भ्रमण व निरीक्षण के द्वारा राष्ट्र-व्यवस्था को ठीक रखता हुआ यह राजा **अस्मे**=इन सब प्रजाओं के लिए **प्रजां पुष्टिम्**=सब प्रकार के विकास को (प्र+जा) तथा धन, शक्ति व ज्ञानादि के पोषण को **वर्धयमानः**=बढ़ाता हुआ होता है। राजा के नियमित निरीक्षण से सब कर्मचारी कार्यों को ठीक करते हैं और प्रजाओं का पोषण व शक्तियों का विकास ठीक प्रकार से होता रहता है। ४. **स्वाहा**=इस राजा के लिए प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं अथवा **स्व**=कर रूप में देय धन को **हा**=प्रसन्नतापूर्वक देते हैं, इसे राष्ट्र-यज्ञ में एक आहुति समझते हैं।

भावार्थ—राजा का जीवन अत्यन्त मर्यादित होना चाहिए। उसे राष्ट्र में सर्वत्र भ्रमण करते हुए राष्ट्र-कार्यों का उत्तमता से सञ्चालन करना चाहिए तभी प्रजा की शक्तियों का विकास व पोषण होता है।

ऋषिः—तापसः। **देवता**—सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्यबृहस्पतयः। **छन्दः**—अनुष्टुप्। **स्वरः**—गान्धारः॥

राज-विश्वास

सोमꣳराजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे।
आदित्यान्विष्णुꣳसूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳस्वाहा॥२६॥

'कैसे व्यक्ति को राजा बनाएँ', इस विषय का वर्णन करते हुए प्रस्तुत मन्त्र में कहते हैं कि **अवसे**=रक्षणादि क्रियाओं के लिए **अनु आरभामहे**=पीछे चलते हुए हम उस राजा पर विश्वास करते हैं (आरभ=to rely on)। हमें राजा पर पूर्ण विश्वास है we have full faith (complete confidence) in him=हम उसके विरोध में 'no confidence motion' अविश्वास प्रस्ताव ही पेश नहीं करते रहते। हम उसके बनाये हुए नियमों का ठीक से पालन करते हैं। १. हम उस राजा पर विश्वास करते हैं जो **सोमम्**=गुण-सम्पन्न है, घमण्ड से रहित है तथा क्रूर मनोवृत्तिवाला नहीं है। २. **राजानम्**=जो ज्ञान की दीप्तिवाला है अथवा स्वास्थ्य के कारण चमकता है तथा प्रजा के जीवन को बड़ा व्यवस्थित=regulated करनेवाला है। ३. **अग्निम्**=जो प्रगतिशील है, उत्तम नेतृत्व देनेवाला है। ४. **आदित्यान्**=जो सदा उत्तमता का आदान करनेवाला है अथवा अग्निवत् शत्रुओं का दाहक है (आदानात् आदित्यः)। ५. **विष्णुम्**=जो व्यापक व उदार मनोवृत्तिवाला है। ६. **सूर्यम्**=(सूरिषु विद्वत्सु भवम्) सदा विद्वानों के सम्पर्क में रहनेवाला है। ७. **ब्रह्माणम्**=जो चतुर्वेदवेत्ता है अथवा उत्पादक (creator) है—सदा उत्पादन के कार्यों में रुचिवाला है। **च**=और ८. **बृहस्पतिम्**= सर्वोच्च दिशा का अधिपति है, अर्थात् अत्यन्त उच्च जीवनवाला है। **स्वाहा**=ऐसे राजा के लिए हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं और ऐसे राजा के लिए ही हम **स्व+हा**=अपने धन का नियत अंश कररूप में देते हैं। इन गुणों से युक्त राजा सच्चा 'तापस'=तपस्वी है। यही मन्त्र का ऋषि है।

भावार्थ—राजा के लिए सोमादि गुण-सम्पन्न होना आवश्यक है। ऐसे राजा में ही प्रजा पूर्ण रूप से विश्वास करती है और उसे उचित कर प्रदान करती है।

ऋषिः—तापसः। **देवता**—अर्यमादिमन्त्रोक्ताः। **छन्दः**—स्वराडनुष्टुप्। **स्वरः**—गान्धारः॥

मन्त्रिवर्ग-प्रेरण

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वाचं विष्णुꣳसरस्वतीꣳसवितारं च वाजिनꣳस्वाहा॥२७॥

गत मन्त्र के राजा को चाहिए कि वह १. **अर्यमणम्**=(अरीन् यच्छति) चोर आदि राष्ट्र के शत्रुओं का नियमन करनेवाले न्यायसचिव को २. **बृहस्पतिम्**=(बृहतां पतिम्) बड़े-बड़े मन्त्रियों के भी पति मुख्यमन्त्री को ३. **इन्द्रम्**=(इदि परमैश्वर्ये) अर्थसचिव को ४. **वाचम्**=वेदवाणी में निपुण धर्मसचिव (पुरोहित) को ५. **विष्णुम्** (विष्लृ व्याप्तौ) विदेश-सचिव को ६. **सरस्वतीम्**=शिक्षासचिव को, ज्ञान का विस्तार करनेवाले को ७. **सवितारम्**=(सु=उत्पन्न करना) उद्योग व व्यापार-सचिव को **च**=और ८. **वाजिनम्**=संग्रामों के विजेता सेना-सचिव को **दानाय**=(दाप् लवणे) राष्ट्र में उत्पन्न बुराईरूप घास-फूस को काटने के लिए और इस प्रकार (दैप् शोधने) राष्ट्र की शुद्धि के लिए **चोदय**=प्रेरित करे। राजा सदा अपने मन्त्रिमण्डल को यही प्रेरणा देता रहे कि वे राष्ट्र में कहीं भी बुराइयों को उत्पन्न न होने दें और जीवन को सदा शुद्ध बनाने का प्रयत्न करें। राष्ट्र में कहीं भी भ्रष्टाचार (corruption) आदि शब्द तो सुनाई ही न पड़े। ९. **स्वाहा**=ऐसे राजा के लिए हम सदा प्रशंसात्मक शब्द कहें और कर आदि के रूप में अपने धन का त्याग करें।

भावार्थ—राजा के मन्त्रिमण्डल में, **'सचिवान् सप्त चाष्टौ वा'** इस मनु के शब्दों के अनुसार आठ मन्त्री हैं। राजा उन्हें सदा राष्ट्र-शोधन की प्रेरणा देता रहे।

ऋषिः—तापसः। **देवता**—अग्निः। **छन्दः**—भुरिगनुष्टुप्। **स्वरः**—गान्धारः॥

प्रजा पर प्रीति

अग्नेऽअच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव।
प्र नो यच्छ सहस्त्रजित् त्वꣳहि धनदाऽअसि स्वाहा॥२८॥

प्रजा राजा से कहती है कि १. **अग्ने**=राष्ट्र को आगे ले-चलनेवाले राजन्! आप **इह**=इस राष्ट्र में **नः अच्छ**=हमारी ओर अर्थात् हमें लक्ष्य करके **आवद**=सब विषयों का उत्तम ज्ञान दो। राजा को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति ज्ञानी बने, राष्ट्रोन्नति की बातों को समझे और राष्ट्र के लिए सदा वैयक्तिक स्वार्थों को छोड़ने के लिए उद्यत हो। २. **नः प्रति**=हमारे—प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति **सुमनाः**=उत्तम मनवाले **भव**=होओ। राजा प्रजा को अपने पुत्रतुल्य समझे, उनकी रक्षा के लिए सदा उद्यत हो। ३. हे **सहस्त्रजित्**=शतशः धनों के विजेता राजन्! तू **नः प्रयच्छ**=हमें उत्तम धन देनेवाला हो। राजा व्यापार आदि की इस प्रकार सुव्यवस्था करे कि राष्ट्र में कोई भी व्यक्ति अपनी जीविका कमाने में असमर्थ न रहे। हे राजन्! **त्वम्**=आप **हि**=निश्चय से **धनदाः**=धन देनेवाले **असि**=हो। वस्तुतः राज्य-व्यवस्था के ठीक न होने पर धनार्जन बड़ा कठिन हो जाता है। मात्स्यन्याय में जिस प्रकार छोटी मछली के लिए जीना सम्भव नहीं होता उसी प्रकार राष्ट्र-व्यवस्था के ठीक न होने पर छोटे व्यापारी के लिए जीना कठिन हो जाता है। बड़े-बड़े पनपते हैं तो छोटे उजड़ते हैं। राष्ट्र में 'अति सम्पन्न और अति विपन्न' इन दो श्रेणियों का निर्माण होकर राष्ट्र की अधोगति होती है। ४. **स्वाहा**=उत्तम व्यवस्था करनेवाले राजा के लिए हम **स्व**=धन का **हा**=त्याग करें, उचित कर आदि के देनेवाले हों।

भावार्थ—जैसे एक पिता सब पुत्रों का ध्यान करता है, इसी प्रकार राजा सारी प्रजा पर प्रीतिवाला हो और सभी को जीविकोपार्जन में सक्षम बनाये।

ऋषिः—तापसः। **देवता**—अर्यमादिमन्त्रोक्ताः। **छन्दः**—भुरिगार्षीगायत्री। **स्वरः**—षड्जः॥

निर्धनता व अज्ञान का निरसन

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः। प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा॥२९॥

गत मन्त्र में धनदाः='हे राजन्! आप ही धन देनेवाले हो' ऐसा कहा था। उसी को कुछ विस्तार से कहते हैं कि १. **नः**=हमें **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) शत्रुओं का नियमन करनेवाला राजा **प्रयच्छतु**=प्रकृष्ट धन देनेवाला हो। राजा हमें ऐसा धन दे जिसे प्राप्त करके हम काम-क्रोधादि शत्रुओं के विजेता बनें। यह धन हमें व्यसनी बनानेवाला न हो २. **पूषा**=सारे राष्ट्र का पोषण करनेवाला राजा **प्र**=हमें प्रकृष्ट धन प्राप्त कराये, अर्थात् प्रजा में प्रत्येक व्यक्ति को पोषण के लिए पर्याप्त धन अवश्य प्राप्त हो। ३. **बृहस्पतिः**=सर्वोच्च दिशा का अधिपति (ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिः) **नः**=हमें उत्तम धन को **प्र**=खूब ही प्राप्त करानेवाला हो। यह बृहस्पति अपना ज्ञानरूप उत्तम धन हमें दे, जिससे हमारा जीवन अधिकाधिक पवित्र हो। ५. **वाग्देवी**=वाणी की अधिदेवता **नः**=हमें **प्रददातु**=खूब ही ज्ञान देनेवाली हो। राष्ट्र में ऐसी सुव्यवस्था होनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर सके। प्रत्येक व्यक्ति पर 'सरस्वती' की कृपा हो, अर्थात् राष्ट्र में कोई अविद्वान् न हो। ६. **स्वाहा**=इस प्रकार से व्यवस्था करनेवाले राजा के लिए हम (सु+आह) प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं और उचित कर देते हैं (स्व+हा)।

भावार्थ—राष्ट्र में कोई निर्धन व अतिधनी न हो। राष्ट्र में कोई अविद्वान् न हो। इस प्रकार से व्यवस्था करनेवाला राजा ही प्रशंसनीय है।

ऋषिः—तापसः। **देवता**—सम्राट्। **छन्दः**—जगती। **स्वरः**—निषादः॥

राज्याभिषेक

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रियै दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ॥३०॥

पुरोहित राजा का अभिषेक करता हुआ कहता है कि १. **त्वा**=तुझे **असौ**=वह मैं **साम्राज्येन**=साम्राज्य के हेतु से **अभिषिञ्चामि**=अभिषिक्त करता हूँ। तुझे इस सिंहासन पर बिठाते हैं, इसलिए कि राष्ट्र का सारा कार्यक्रम बड़े व्यवस्थित (regulated) प्रकार से चले। यह व्यवस्थित ही नहीं, सम्यग् व्यवस्थित हो। २. **त्वा** =तुझे **सवितुः देवस्य**=प्रेरक प्रभु की **प्रसवे**=आज्ञा में **दधामि**=धारण करता हूँ। तू इस सिंहासन पर बैठकर प्रभु की वेदोपदिष्ट नीति से राज्य का शासन कर। ३. मैं तुझे **अश्विनोः**=प्राणापान के **बाहुभ्याम्**=(बाह प्रयत्ने) प्रयत्नों के हेतु से **दधामि**=इस गद्दी पर बिठाता हूँ। 'प्राण' का काम शक्ति का धारण है—तूने भी राष्ट्र को शक्ति-सम्पन्न बनाना है। 'अपान' का काम दोषों का दूरीकरण है—तुझे भी राष्ट्र में से मलों व बुराइयों को समाप्त करना है। ४. **पूष्णः**=पूषा के **हस्ताभ्याम्**=हाथों के हेतु से मैं तुझे इस गद्दी पर बिठाता हूँ, अर्थात् तूने राष्ट्र में ऐसी सुन्दर व्यवस्था करनी है कि राष्ट्र का कोई भी व्यक्ति अकर्मण्य न हो और साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को पोषण के लिए पर्याप्त धन प्राप्त हो। संक्षेप में प्रत्येक व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता के अनुसार कार्य करे और आवश्यकतानुसार उसे धन प्राप्त हो। वस्तुतः यही समाजवाद का सिद्धान्त है जो प्रत्येक घर में लागू होता है—'इसी सिद्धान्त को राष्ट्र में भी लागू करना' राजा का कर्त्तव्य है। ५. **सरस्वत्यै**=सरस्वती के लिए मैं तुझे इस सिंहासन पर बिठाता हूँ। राष्ट्र में सर्वत्र विद्या के प्रसार के लिए तुझे गद्दी पर बिठाया गया है। ६. **वाचो यन्तुः**=वेदवाणी के अर्थ का नियमन करनेवाले, अर्थात् वेदार्थ के स्पष्ट करनेवाले **बृहस्पतेः**=(ब्रह्मणस्पतेः) चतुर्वेदवेत्ता विद्वान् के **यन्त्रिये**=नियमन में मैं तुझे **दधामि**=स्थापित करता हूँ। प्रत्येक राजा किसी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण के नियन्त्रण में होना चाहिए तभी वह राजा ग़लतियाँ न करता हुआ राष्ट्र

की उत्तम रक्षा करनेवाला होता है।

भावार्थ—राजा विद्वान् आचार्य के नियन्त्रण में रहता हुआ राष्ट्र की उत्तम व्यवस्था करे।

ऋषिः—तापसः। **देवता**—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः। **छन्द**—स्वराडतिधृतिः **स्वरः**—षड्जः॥

'अग्निः, अश्विनौ, विष्णुः, सोमः' उज्जिति=उत्कृष्ट विजय

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम्॥ ३१॥

१. **अग्निः**=(अग्रेणीः) आगे बढ़ने की मनोवृत्तिवाला—सारे राष्ट्र का सञ्चालक राजा **एकाक्षरेण**=(**व्याहरन्**) 'ओम्' इस अद्वितीय अक्षर के जप से **प्राणम्**=प्राण को **उदजयत्**=जीतता है। **तम्**=उस प्राण को **उज्जेषम्**=मैं भी जीतूँ। 'ओम्' के जप से मनुष्य वासनाओं से बचा रहता है और वासनाओं का शिकार न होने से इसकी प्राणशक्ति ठीक बनी रहती है। यही 'एक अक्षर से प्राणों का विजय' है। आगे बढ़ने की वृत्तिवाले 'अग्नि' के लिए यह आवश्यक है। बिना प्रणव-जप के किसी भी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं। २. **अश्विनौ**=प्राण और अपान **द्व्यक्षरेण**=दो व्यापक सिद्धान्तों से (अश् व्याप्तौ), अर्थात् विद्या और श्रद्धा से **द्विपदः मनुष्यान्**=दो पाँववाले मनुष्यों को (पद् गतौ)—द्विविध गतिवाले मनुष्यों को **उदजयताम्**=उन्नत करते हैं—उत्कृष्ट विजयवाला करते हैं। **तान् उज्जेषम्**=मैं इन मनुष्यों को जीत जाऊँ, अर्थात् श्रद्धा व विद्या-सम्पन्न पुरुषों में मेरा स्थान प्रमुख हो। ३. 'ओम्' का जप करनेवाला विषयों में न फँसकर प्राणशक्ति का विजय करता है तथा प्राणापान की साधना करनेवाला श्रद्धा व विद्या-सम्पन्न होकर 'अभ्युदय व निःश्रेयस' दोनों को सिद्ध करनेवाले मनुष्यों को जीत जाता है, अर्थात् उनका अग्रणी बनता है। अब यह **'विष्णुः'** (विष्लृ=व्याप्तौ) व्यापक उन्नति करनेवाला बनता है और **त्रि अक्षरेण**=तीन व्यापक तत्त्वों के द्वारा मस्तिष्क में 'प्रज्ञा', मन में 'उत्साह' और शरीर में 'बल' के द्वारा यह **त्रीन् लोकान्**=तीनों लोकों को **उदजयत्**=जीतता है। आध्यात्म में ये तीन लोक 'शरीर, मन और बुद्धि' हैं। **तान् उज्जेषम्**=मैं भी इन तीनों लोकों का विजय करनेवाला बनूँ। मेरा शरीर बल-सम्पन्न हो तो मन उत्साहमय हो और मस्तिष्क प्रज्ञा से पूर्ण हो। ४. इस व्यापक उन्नति को करनेवाला मैं **सोमः**=सौम्य स्वभाववाला—विनीत बनूँ। यह सोम **चतुरक्षरेण**='साम, दाम, भेद व दण्ड' इन चार व्यापक सिद्धान्तों के द्वारा **चतुष्पदः पशून्**=चार पाँववाले, चारों ओर भटकनेवाले पशुओं को भी **उदजयत्**=जीत जाता है। **तान् उज्जेषम्**=मैं भी इनको जीतनेवाला बनूँ। सोम होता हुआ मैं सभी का विजेता होऊँ। विजय के लिए मैं क्रमशः 'साम, दान, भेद व दण्ड' इन उपायों का प्रयोग करूँ।

५. यहाँ मन्त्र में चारों वाक्यों के कर्तृपदों का क्रम यह है—'अग्नि, अश्विनौ, विष्णु, सोम'। एक वाक्य में कहें तो अर्थ यह होगा कि 'आगे बढ़नेवाला (अग्नि) प्राणापान की (अश्विनौ) साधना करता है और शरीर, मन व मस्तिष्क सभी दृष्टिकोणों से व्यापक उन्नति करता हुआ यह (विष्णु) अधिक-से-अधिक विनीत (सोम) होता है।

६. मन्त्र के करणपदों का क्रम यह है 'एकाक्षरेण—द्व्यक्षरेण—त्र्यक्षरेण—चतुरक्षरेण' इनके अर्थ एक वाक्य में इस प्रकार होंगे कि—मनुष्य एकाक्षर 'ओम्' का सतत जप करता हुआ द्व्याक्षर 'श्रद्धा व विद्या' को विकसित करने के लिए यत्नशील हो। 'इसका मस्तिष्क प्रज्ञा से परिपूर्ण हो तो इसका हृदय सदा उत्साहमय हो और शरीर में यह बल-सम्पन्न हो।

इस प्रकार निज जीवन को उन्नत बनाकर यह अपने व्यावहारिक जीवन में 'साम, दाम, भेद व दण्ड' का ठीक प्रयोग करता हुआ सभी को अपने वश में करनेवाला हो। ७. मन्त्र के कर्मपदों का क्रम यह है 'प्राणम्–द्विपदो मनुष्यान्–त्रीन् लोकान्–चतुष्पदः पशून्' इनका अभिप्राय यह है कि हम प्राण का विजय करें। प्राणों की साधना करके मस्तिष्क में विद्या तथा हृदय में श्रद्धा का विकास करें तब अभ्युदय व निःश्रेयस को सिद्ध करनेवाले मनुष्यों को जीत जाएँगे। इस विद्या व श्रद्धा का परिणाम हमारे जीवन पर यह होगा कि हमारा शरीर सबल होगा, हृदय सोत्साह तथा मस्तिष्क सप्रज्ञ (बुद्धियुक्त)। इस प्रकार त्रिविध उन्नति करके हम तीनों लोकों का विजय कर रहे होंगे। यह विजय हमें इस योग्य बनाएगी कि हम चतुष्पद पशुओं पर भी सामादि उपायों द्वारा विजय पाएँगें।

भावार्थ–हमारा जीवन क्रमशः उन्नति करता हुआ विजयी और विजयी ही बनता चले।

ऋषिः–तापसः। **देवता**–पूषादयो मन्त्रोक्ताः। **छन्दः**–कृतिः। **स्वरः**–निषादः॥

पूषा–सविता–मरुतः–बृहस्पतिः

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिशऽ उदजयत्ताऽ उज्जेषꣳसविता षडक्षरेण षड्ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयꣳस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम्॥३२॥

१. **पूषा**=अपना पोषण करनेवाला **पञ्च**=पाँच **अक्षरेण**=व्यापक तत्त्वों के द्वारा पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश की अनुकूलता के द्वारा **पञ्च दिशः**=पाँचों दिशाओं को **उदजयत्**=जीत लेता है, पाँचों दिशाओं में उन्नति करता है। इसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ–पार्थिव घ्राणेन्द्रिय, अम्मय रसनेन्द्रिय, तैजस् चक्षु, वायवीय त्वचा और आकाशैकदेशभूत श्रोत्रेन्द्रिय–ठीक प्रकार से विकसित होती हैं–पाँचों कर्मेन्द्रियों का यह ठीक विकास कर पाता है। इसके पाँचों प्राण इसके वश में होकर ठीक-ठीक कार्य करते हैं। इस प्रकार यह सचमुच ही पूषा बन जाता है। इसकी यह कामना पूर्ण होती है कि **ताः उज्जेषम्**=मैं भी इन पाँचों दिशाओं को जीत लूँ। २. **सविता**=सबका प्रेरक तथा सब ऐश्वर्यों से युक्त यह सूर्य **षडक्षरेण**=छह व्यापक शक्तियों के द्वारा–जो शक्तियाँ छह ऋतुओं को पैदा करने का कारण बनती हैं, उन शक्तियों के द्वारा **षट् ऋतून्**=छह ऋतुओं का **उदजयत्**=विजय करता है। **तान् उज्जेषम्**=मैं भी उन छह ऋतुओं का विजेता बनूँ। ये छह-की-छह ऋतुएँ मेरे अनुकूल हों। ऋतु शब्द 'ऋ' गतौ से बनकर छह गतियों का संकेत करता हैं। राजा के क्षेत्र में ये छह गतियाँ 'सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव व समाश्रय' इन शब्दों से कही जाती हैं। सामान्य व्यक्ति के जीवन में भी पाँच कर्मेन्द्रियों व छठे मन की गतियाँ छह ऋतुओं से अभिप्रेत हैं। समय के अनुकूल उस-उस क्रिया के द्वारा मनुष्य सर्वदा स्वस्थ रह पाता है–कोई भी ऋतु उसके प्रतिकूल नहीं होती। ३. **मरुतः**=(मितराविणः) परिमित बोलनेवाले योगसाधनरत मुनिलोग **सप्ताक्षरेण**=सात व्यापक तत्त्वों के द्वारा **सप्त**=सात **ग्राम्यान् पशून्**=इन्द्रिय-ग्रामों में निवास करनेवाले शीर्षण्य प्राणों को **उदजयत्**=जीत लेते हैं। मैं भी **तान् उज्जेषम्**=इन सप्त शीर्षण्य प्राणों का विजेता बनूँ। 'पशु' शब्द 'दृश्' धातु से बनता है। 'दृश्' की पर्यायभूत धातु 'ऋष' है; जिससे 'ऋषि' शब्द बनता है। एवं, पशु व ऋषि पर्यायवाची हो जाते हैं। इन्हीं सात ऋषियों का उल्लेख **'सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे'** इस मन्त्र में है। शरीर पञ्चभूतों का बना होने से पञ्चभौतिक ग्राम-सा है। उस ग्राम में रहनेवाले **'कर्णाविमौ नासिके अक्षणी मुखम्'** ये सप्त शीर्षण्य प्राण हैं। मितरावी मुनि इनका विजय करते हैं।

मुख्यरूप से ये सात कहलाते हैं। इनकी साधना से सप्त ऋषि स्वस्थ रहते हैं। ४. **बृहस्पतिः**=सर्वोच्च दिशा का अधिपति **अष्टाक्षरेण**=आठ व्यापक तत्त्वों के द्वारा 'पञ्चभूत तथा अंहकार, महान् व अव्यक्त' इस अष्टधा प्रकृति के द्वारा **गायत्रीम्**=(गायाः प्राणाः तान् तत्रे) प्राणरक्षा का **उदजयत्**=उत्कृष्ट विजय करता है **ताम्**=उस प्राणरक्षा को मैं भी **उज्जेषम्**=जीतनेवाला बनूँ। पञ्चभूतों की विजय से अन्नमय व प्राणमयकोशों का स्वास्थ्य प्राप्त होता है। स्थूल भूत अन्नमयकोश में काम करते हैं तो सूक्ष्म भूत प्राणमयकोश में। अहंकार के विजय से मनोमयकोश का स्वास्थ्य प्राप्त होता है और महान् के विजय से विज्ञानमयकोश स्वस्थ होता है। अव्यक्त प्रकृति-विजय से आनन्दमयकोश ठीक होता है। इस अष्टधा प्रकृति का विजय ही गायत्री का विजय है।

५. **'पूषा, सविता, मरुतः, बृहस्पतिः'** इन कर्तृपदों से यह बात स्पष्ट है कि पोषण करनेवाला ही ऐश्वर्य का अधिपति होता है और प्राणसाधना करनेवाला मितरावी मुनि ही सर्वोच्च दिशा का अधिपति बनता है। ६. मन्त्र के **'पञ्च दिशा, षड् ऋतून्, सप्त ग्राम्यान् पशून्** तथा **गायत्रीम्'** इन कर्मपदों का उपदेश यह है कि (क) पाँचों दिशाओं में उन्नति करनेवाला, अर्थात् पृथिवी आदि सभी भूतों को अपने अनुकूल बनानेवाला ही सब ऋतुओं का विजेता बनता है। (ख) और सप्त शीर्षण्य प्राणों का विजेता ही अष्टधा प्रकृति का विजय कर पाता है। ७. मन्त्र के करणपदों का संकेत स्पष्ट है कि हम (क) शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय व पाँच प्राण सभी दिशाओं में उन्नति करें। (ख) अपने जीवन में पाँचों कर्म-इन्द्रियों व मन—इन छह-की-छह गतियों को ठीक करें। (ग) सप्त शीर्षण्य प्राणों को सप्त मरुतों की साधना से ठीक रक्खें। (घ) **'पञ्चभूत, अहंकार, महान्** व **अव्यक्त'** इस अष्टधा प्रकृति की अनुकूलता का सम्पादन करें।

भावार्थ—हमें अपने जीवनों में क्रमशः उन्नति करते हुए 'पूषा, सविता, मरुतः व बृहस्पति' बनना है।

ऋषिः—तापसः। **देवता**—मित्रादयो मन्त्रोक्ताः। **छन्दः**—कृतिः। **स्वरः**—निषादः॥

मित्र—वरुण—इन्द्र—विश्वेदेवाः

मि॒त्रो नवा॑क्षरेण त्रि॒वृत॒ꣳस्तोम॒मुद॑जय॒त्तमुज्जे॑ष॒ं वरु॑ण॒ो दशा॑क्षरेण वि॒राज॒मुद॑जय॒त्तामुज्जे॑ष॒मिन्द्र॒ऽएका॑दशाक्षरेण त्रि॒ष्टुभ॒मुद॑जय॒त्तामुज्जे॑ष॒ं विश्वे॑ दे॒वा द्वाद॑शाक्षरेण॒ जग॑ती॒मुद॑जय॒ँस्तामुज्जे॑षम्॥ ३३॥

१. **मित्रः**=(प्रमीतेः त्रायते) मृत्यु से अपने को बचानेवाला **नवाक्षरेण**=नौ व्यापक तत्त्वों के हेतु से—(पाँच ज्ञानेन्द्रियों व पाँच कर्मेन्द्रियों में जिह्वा के दोनों ओर होने से कुल नौ ही गिनते हैं) इन नौ इन्द्रियों की शक्ति के हेतु से **त्रिवृतं स्तोमम्**=त्रिगुणित 'सत्त्व, रज व तम्' अथवा वात, पित्त व कफ़ इन गुणों के समुदाय को **उदजयत्**=जीत लेता है। **तम्**=उस 'त्रिगुणित गुण समुदाय' को मैं भी **उज्जेषम्**=जीतनेवाला बनूँ। 'सत्त्व, रज व तम्' 'स्तोम' इसलिए हैं कि ये परस्पर मिले होते हैं और 'उत्तम, मध्यम, निकृष्ट' भेद से त्रिगुणित होकर ये नौ हो जाते हैं। इनके ठीक कार्य करने पर सब इन्द्रियाँ ठीक रहती हैं। इन्द्रियों का ठीक रहना ही स्वास्थ्य है, रोगों से बचना है। एवं, मित्र=रोगों से अपने को बचानेवाला इस त्रिवृत् स्तोम को जीतने का ध्यान करता है। २. **वरुणः**=श्रेष्ठ अथवा (वारयति) रोगों का निवारण करनेवाला, रोगों को उत्पन्न ही न होने देनेवाला **दशाक्षरेण**=दस व्यापक तत्त्वों के द्वारा अर्थात् 'प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नाग, कूर्म, कृकल,

देवदत्त, धनञ्जय' इन दस प्राणशक्तियों की साधना के द्वारा **विराजम्**=विशिष्ट दीप्ति को **उदजयत्**=जीतता है **ताम्**=उस विशिष्ट दीप्ति को **उज्जेषम्**=मैं भी विजय करूँ। वस्तुतः प्राणशक्ति से ही रोग-निवारण सम्भव होता है और इस रोग-निवारण का परिणाम 'स्वास्थ्य की दीप्ति' है, उसे ही यहाँ 'विराज्' कहा गया है। ३. **इन्द्रः**=सब इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव **एकादशाक्षरेण**=दस इन्द्रियाँ व ग्यारहवें मन की व्यापक शक्ति के द्वारा **त्रिष्टुभम्**=काम, क्रोध व लोभ के रोकने को (स्तुभ्=stop) **उदजयत्**=जीतता है, अर्थात् काम, क्रोध व लोभ को अपने में प्रवेश नहीं करने देता। **ताम्**=इस त्रिष्टुभ् को **उज्जेषम्**=मैं भी जीतूँ अर्थात् काम-क्रोधादि को अपने में उत्पन्न न होने दूँ। वैयक्तिक साधना के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। ४. अब इन्द्र अर्थात् कामादि शत्रुओं का विद्रावण करनेवाला बनकर मैं 'विश्वेदेवाः' बनता हूँ। सब दिव्य गुणों को अपना पाता हूँ। **द्वादशाक्षरेण**=दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन बारह व्यापक शक्तियों के द्वारा **जगतीम्**=सारे लोक को **उदजयन्**=जीत लेते हैं, **ताम्**=उस जगती को **उज्जेषम्**=मैं भी जीतनेवाला बनूँ। मनुष्य मन को वश में करके काम-क्रोधादि को जीतकर शान्ति प्राप्त करता है और बुद्धि का सम्पादन होने पर वह सारे व्यवहार को बुद्धिपूर्वक करता हुआ सारे लोक को अनुकूल बना पाता है। ऐसा कर लेने पर उसमें सब दिव्य गुणों का वास होता है।

५. (क) मन्त्र के कर्तृपदों का बोध यह है कि रोगों से अपने को बचाना, अर्थात् रोगों के साथ संघर्ष करके उनपर विजय पाना आवश्यक है। (ख) उससे भी उत्तम यह है कि हम वरुण बनें, रोगों को आने ही न दें। (ग) इन उद्देश्यों से हम इन्द्र=इन्द्रियों के अधिष्ठाता बनें और काम आदि आसुर वृत्तियों का विद्रावण करनेवाले हों। इन वृत्तियों को दूर करके हम (घ) **विश्वेदेवाः**=सब दिव्य गुणों को अपने में विकसित करें। ६. कर्मपदों का बोध इस रूप में है कि (क) परस्पर सम्बद्ध सत्त्व, रज व तम के स्तोमों को जीतकर हम (ख) नीरोग बनकर विशिष्ट दीप्तिवाले हों। शारीरिक दृष्टि से हम स्वास्थ्य की चमकवाले हों। (ग) अब काम, क्रोध व लोभ को जीतकर इन्हें अपने से पूर्णरूप से दूर करके (घ) सम्पूर्ण जगती के प्रिय बनें।

७. करणपदों का बोध यह है कि हम (क) सब इन्द्रियों के स्वास्थ्य का सम्पादन करें। (ख) दश प्राणों को स्वाधीन करें। (ग) इन्द्रियरूप घोड़ों को मनरूप लगाम द्वारा वशीभूत करके (घ) मनरूप लगाम को भी बुद्धिरूप सारथि द्वारा थामनेवाले हों, अर्थात् हमारे जीवनों में बुद्धि का सर्वोपरि महत्त्व हो।

भावार्थ—हम क्रमशः 'मित्र, वरुण, इन्द्र व विश्वेदेवाः' बनने का यत्न करें।

ऋषिः—तापसः। **देवता**—वस्वादयो मन्त्रोक्ताः। **छन्दः**—निचृज्जगती [क], निचृद्धृतिः[ख]। **स्वरः**—निषादः[क], ऋषभः[ख]॥

वसवः—रुद्राः—आदित्याः—अदितिः—प्रजापतिः

[क]वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳस्तोममुदजयँस्तमुज्जेषꣳ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳस्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमा[ख]दित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयँस्तामुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳस्तोममुदजयꣳस्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳस्तोममुदजयꣳस्तमुज्जेषम्॥ ३४॥

१. **वसवः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले वसु ब्रह्मचारी **त्रयोदश अक्षरेण**=तेरह अविनाशी व व्यापक तत्त्वों से **त्रयोदशं स्तोमम्**=तेरह के समूह को—अर्थात् इन्द्रियरूप नव द्वारों तथा मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार को **उदजयत्**=जीत लेते हैं। मैं भी **तम्**=नव द्वारों

तथा अन्तःकरण चतुष्टय को **उज्जेषम्**=जीत लूँ। वस्तुतः उत्तम निवास के लिए इन सबका ठीक होना आवश्यक है। २. **रुद्राः**=(रुत् + र) ज्ञान देनेवाले रुद्र ब्रह्मचारी **चतुर्दश अक्षरेण**=चौदह व्यापक शक्तियों के द्वारा **चतुर्दशं स्तोमम्**=चौदह के समूह को, दश इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ) तथा मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार को **उदजयन्**=जीत लेते हैं। **तम्**=उस समूह को **उज्जेषम्**=मैं भी जीत लूँ। ३. **आदित्याः**=सब स्थानों से उत्तमताओं का ग्रहण करनेवाले आदित्य ब्रह्मचारी **पञ्च दशाक्षरेण**=पन्द्रह व्यापक शक्तियों के द्वारा **पञ्चदशं स्तोमम्**=दश इन्द्रियाँ—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा हृदय के समूह को **उदजयन्**=जीत लेते हैं **तम्**=उस समूह को मैं भी **उज्जेषम्**=जीत लूँ। ४. **अदितिः** =अदीना देवमाता **षोडश अक्षरेण**=सोलह व्यापक शक्तियों के द्वारा **षोडशं स्तोमम्**=सोलह के समूह को—शरीर में निवास करनेवाली सोलह कलाओं को **उदजयत्**=जीत लेती है **तम्**= उस सोलह कलाओं के समूह को **उज्जेषम्**=मैं भी जीत लूँ। ५. **प्रजापतिः**=प्रजाओं का रक्षक अथवा प्रजा—विकास की रक्षा करनेवाला राजा **सप्तदशाक्षरेण**=सत्रह व्यापक शक्तियों के द्वारा **सप्तदशं स्तोमम्**=दस इन्द्रियों, पञ्च प्राण तथा मन व बुद्धि के समूहरूप सूक्ष्म व लिङ्गशरीर को **उदजयत्**=जीत लेता है, **तम्**=मैं भी सत्रह तत्त्वों से बने सूक्ष्म शरीर को **उज्जेषम्**=जीत लूँ। इस शरीर की विजय के बाद ही तो मैं कारणशरीर के विजय के लिए उद्यत होऊँगा। अथवा १. वसु—नव द्वार व अन्तःकरण चतुष्टय की तेरह व्यापक शक्तियों के द्वारा 'सत्याकारास्त्रयोदश' इस वाक्य में कहे गये सत्य के सब रूपों को जीत लेते हैं। मैं भी इसी प्रकार सत्य के त्रयोदश रूपों का विजेता बनूँ। २. रुद्र—दस इन्द्रियों व अन्तःकरण चतुष्टय की व्यापक शक्तियों के द्वारा चौदह विद्याओं के समूह को जीत लेते हैं। मैं भी चौदह विद्याओं के समूह का विजेता बनूँ (षडङ्गमिश्रिता वेदा धर्मशास्त्रं पुराणकम्। मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याश्चतुर्दश) ३. आदित्य—दस इन्द्रियाँ अन्तःकरण चतुष्टय तथा हृदय की व्यापक शक्तियों के द्वारा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ व पाँच प्राणों के समूह को जीत लेते हैं। मैं भी इस समूह को जीतूँ। ४. आदित्य सोलह कलाओं की व्यापक शक्तियों के द्वारा सोलह कलाओं का विजय करते हैं। मैं भी इनका विजय करूँ तथा ५. प्रजापति सप्तदश शक्तियों से, अविनाशी तत्त्वों से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण तथा मन व बुद्धि से बने सूक्ष्मशरीर का विजय करता है। मैं भी इसका विजेता बनूँ।

भावार्थ—१. हमें क्रमशः विकास करते हुए स्वस्थ शरीरवाला **'वसु'**, उत्तम ज्ञान देनेवाला **'रुद्र'**, सब गुणों का अंशदान करनेवाला **'आदित्य'**, कामादि सब शत्रुओं से अखण्डित **'अदिति'** तथा सम्पूर्ण विकासों का स्वामी **'प्रजापति'** बनना है। २. हमें सत्य के तेरह रूपों को, चतुर्दश विद्याओं को, इन्द्रिय दशक व प्राण पञ्चक को, सोलह कलाओं को तथा सत्रह तत्त्वों से बने सूक्ष्मशरीर को जीतना है। यही वस्तुतः सच्ची तपस्या है। इस तपस्या को करनेवाले हम 'तापस' बनते हैं। तापस ही प्रस्तुत मन्त्रों का ऋषि है।

ऋषिः—वरुणः। **देवता**—विश्वेदेवाः। **छन्दः**—विराडुत्कृतिः। **स्वरः**—षड्जः॥

राजा व मन्त्रीवर्ग

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यऽउत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽउपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा॥३५॥

१. राष्ट्र में राजा व सभ्य चुने जाते हैं। चुने जाने के कारण इनका नाम 'वरुण' है (व्रियन्ते)। इनमें सर्वप्रथम राजा का उल्लेख करते हैं कि—हे **निर्ऋते**=('तिग्मतेजा वा निर्ऋतिः' श० ७।८।१।१०) तीव्र तेजवाले राजन्! **एषः**=यह राष्ट्र, यह देश **ते**=तेरा **भागः** (भज्यते सेव्यते कर्मणि घञ्)=सेवनीय है, तूने इस देश की सेवा करनी है। **तं जुषस्व**=तू उस देश की प्रीतिपूर्वक सेवा कर। पूर्ण उत्साह से राष्ट्र की सेवा में प्रवृत्त हो। **स्वाहा**=तू इस राष्ट्र की सेवा के लिए स्वार्थ का त्याग करनेवाला हो। २. इस राजा के पूर्वभाग में वे सभ्य बैठे हैं जो **अग्निनेत्रेभ्यः**=राष्ट्र को उन्नत करने के दृष्टिकोणवाले हैं, जिनका कार्य सदा राष्ट्र की उन्नति के विषय में सोचनामात्र है, जो सदा उन्नति की योजनाएँ (plannings) बनाते रहते हैं। इन **पुरःसद्भ्यः**=पूर्वभाग में बैठनेवालों **देवेभ्यः**=देदीप्यमान मस्तिष्कवालों के लिए **स्वाहा**=हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। ३. अब **यमनेत्रेभ्यः**=नियन्त्रण के दृष्टिकोणवाले—राष्ट्र में व्यवस्था स्थापित करनेवाले (होम-मिनिस्ट्री के सदस्यों के लिए) **देवेभ्यः**=अनियन्त्रण पर विजय पानेवाले विद्वानों के लिए **दक्षिणा सद्भ्यः**=राजा के दक्षिण पार्श्व में स्थित देवों के लिए **स्वाहा**=हम प्रशंसात्मक शब्द कहते हैं। अग्निनेत्र देवों ने आगे और आगे ले-चलना है, अतः अग्रगति की प्रतीक 'प्राची' दिशा उनका स्थान है और नियन्त्रण के द्वारा कार्यकुशलता में वृद्धि करनेवाले देवों की दिशा 'दक्षिण' है—यही दिशा दाक्षिण्य व कुशलता का प्रतीक है। ४. **विश्वदेवनेत्रेभ्यः**=सब दिव्य गुणों के विकास के दृष्टिकोणवाले **पश्चात् सद्भ्यः**=पश्चिम में स्थित होनेवाले, क्योंकि यही दिशा प्रत्याहार=(फिर से वापस लाने) की प्रतीक है **देवेभ्यः**=देवों के लिए **स्वाहा**=हम शुभ शब्द बोलते हैं। पश्चिम दिशा 'प्रतीची' कहलाती है। इसमें सूर्यकिरणें 'प्रति अञ्च्' वापस आती हैं। इसी प्रकार इसमें स्थित देवों का कार्य प्रजाओं को विषयों से व्यावृत्त करना है। विषयों से वापस लाकर ही तो ये उन्हें दिव्य गुणोंवाला बनाएँगे। इसी दृष्टिकोण से ये विश्वदेवनेत्र हैं—अर्थात् राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञानी बनाने के दृष्टिकोणवाले हैं। ५. **उत्तरासद्भ्यः**=उन्नति की प्रतीकभूत उत्तर दिशा में बैठनेवाले **मित्रावरुणनेत्रेभ्यः**=प्राणापान की वृद्धि के दृष्टिकोणवाले अथवा स्नेहवर्धन व द्वेष-निवारण के दृष्टिकोणवाले **देवेभ्यः**=देवों के लिए अथवा **मरुन्नेत्रेभ्यः**=सब प्राण-भेदों के वर्धन के दृष्टिकोणवाले देवों के लिए **स्वाहा**=हम शुभ शब्द कहते हैं। प्राणों की शक्ति की वृद्धि ही सब उन्नतियों का मूल है। ६. अन्त में **सोमनेत्रेभ्यः**=सौम्यता ही जिनका दृष्टिकोण है उन **उपरिसद्भ्यः**=जो राजा के भी ऊपर हैं (जैसे रामचन्द्र के ऊपर वसिष्ठ थे), जिनकी बात राजा भी आज्ञावत् मानता है, उन **दुवस्वद्भ्यः**=प्रभु परिचर्यारत **देवेभ्यः**=विद्वानों के लिए **स्वाहा**=हम प्रशंसा के शब्द बोलते हैं। इन्हीं के लिए ४० वें मन्त्र में इस प्रकार के शब्द कहे जाएँगे कि **'एष वो अमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा'** अर्थात् **अमी**=हे प्रजाओ। **वः**=आपका **एषः**=यह **राजा**=राजा है, परन्तु **अस्माकम्**=हम (ब्रह्मणि स्थितानाम्) सदा ब्रह्म में स्थित होनेवालों का तो **सोमः**=परमात्मा ही **राजा**=राजा व शासक है। एवं, ये प्रभु परिचर्यारत 'दुवस्वत्' लोग 'उपरिसद्' हैं, राजा से भी ऊपर हैं।

भावार्थ—राजा राष्ट्र का सबसे बड़ा सेवक है। उसके मन्त्रीवर्ग क्रमशः राष्ट्र की उन्नति, नियन्त्रण, दिव्य गुणवृद्धि, ज्ञान का विस्तार व प्राणशक्ति की वृद्धि करने में लगे हैं। कुछ लोग वे भी हैं जिनका कार्य यह है कि इन सब अधिकारियों को सौम्य बनाये रहें।

ऋषिः—वरुणः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्दः—विकृतिः। स्वरः—मध्यमः॥

राष्ट्र सञ्चालक देव

ये देवाऽअग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राऽउपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा॥३६॥

१. **ये देवाः**=जो राष्ट्र के व्यवहार के चलानेवाले मन्त्री **अग्निनेत्राः**=राष्ट्र को आगे और आगे ले-चलने के दृष्टिकोणवाले हैं, **पुरःसदः**=जो राजा के पूर्व की दिशा में स्थित होते हैं **तेभ्यः**=उनके लिए **स्वाहा**=हम उत्तम शब्द कहते हैं अथवा हम (स्व+हा=) अपने कर-भाग को देते हैं। इसी कर द्वारा प्राप्त आय से ही तो वे राष्ट्रोन्नति की सब योजनाएँ बना सकेंगे। एवं, स्पष्ट है कि राजा ने सबसे पूर्व योजना-मन्त्रियों (Planning Commission) की स्थापना करनी है। 'प्राची' (पूर्व) में इनका स्थान इसलिए है कि यह दिशा 'प्र-अञ्च=आगे बढ़ने का संकेत करती है और इन्हें सदा अपने कार्य का स्मरण कराती है। २. **ये देवाः**=जो देव **यमनेत्राः**=राष्ट्र में नियन्त्रण-स्थापना की दृष्टिवाले हैं **दक्षिणासदः**=दक्षिण दिशा में जिनका स्थान है **तेभ्यः स्वाहा**=उनके लिए भी हम **स्वाहा**=शुभ बोलते हुए अपने नियत कर-भाग को देते हैं। ये मन्त्री व कार्यसचिव राष्ट्र को सुव्यवस्थित करते हुए लोगों की कार्यकुशलता व दाक्षिण्य को बढ़ाते हैं। 'दक्षिण' दिशा इन्हें अपने कार्य का स्मरण कराती रहती है। ३. **ये देवाः**=जो राष्ट्र को ज्ञान की ज्योति से दीप्त करनेवाले **विश्वदेवनेत्राः**=सभी को ज्ञानी व दिव्य गुणोंवाले बनाने के दृष्टिकोणवाले हैं और **पश्चात् सदः**=पश्चिम की ओर बैठे हैं, जिन्हें यह प्रतीची (पश्चिम) दिशा (प्रति-अञ्च्) विषय-व्यावृत्त होने का संकेत दे रही है, **तेभ्यः**=उन देवों के लिए **स्वाहा**= शुभ शब्द बोलते हुए हम अपना कर-भाग देते हैं। ४. **ये देवाः** =जो देव राष्ट्र में सब रोगों को जीतने की कामनावाले हैं (दिव् विजिगीषा) अतएव **मित्रावरुणनेत्राः**=प्राणापान की वृद्धि के दृष्टिकोणवाले हैं अथवा मित्रता व द्वेष-निवारण के दृष्टिकोणवाले हैं **वा**=अथवा **मरुत् नेत्राः**=सब प्राणशक्तियों को बढ़ाने के दृष्टिकोण को अपनाये हुए हैं और **उत्तरासदः**=उत्तर दिशा में स्थित हुए सदा स्मरण करते हैं कि हमें राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को नीरोग बनाते हुए ऊपर और ऊपर उठने की क्षमतावाला बनाना है, **तेभ्यः स्वाहा**=उनके लिए हम शुभ शब्द बोलते हैं और अपना कर-भाग देते हैं। ५. **ये देवाः**=जो देवता—'दैवी सम्पत्ति' को प्राप्त व्यक्ति **सोमनेत्राः**=सौम्यता के दृष्टिकोणवाले हैं, निरभिमानता को प्रचरित करनेवाले हैं, **उपरिसदः**=राजशासन से भी ऊपर हैं, जिनका शासन प्रभु द्वारा ही हो रहा है **दुवस्वन्तः**=जो बहुत प्रकार के धर्म के सेवन से युक्त हैं, **तेभ्यः**=उन जितेन्द्रिय देवों के लिए भी **स्वाहा**=हम शुभ शब्द बोलते हैं और अपना कर-भाग देते हैं। ६. इन उल्लिखित पाँचों सचिवों की सलाह के अनुसार राजा ने राष्ट्र में कार्यों को करना है। इन देवों से प्रेरणा प्राप्त करने से राजा 'देववात' कहलाता है।

भावार्थ—राष्ट्र में राजा ने मन्त्रियों के मन्त्र के अनुसार ही कार्य करना है। राजा स्वच्छन्द नहीं है। सब मन्त्रिवर्ग भी ब्रह्मनिष्ठ लोगों के उपदेशों से सदा सौम्य व निरभिमान बने रहते हैं।

ऋषिः—देववातः। देवता—अग्निः। छन्दः—निचृदनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

अग्नि

अग्ने सहस्व पृतनाऽअभिमातीरपास्य। दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि॥३७॥

प्रस्तुत मन्त्र में राजा के मुख्य कार्य का प्रतिपादन इन शब्दों में करते हैं कि १. **अग्ने**=हे राष्ट्र को सब दृष्टिकोणों से उन्नत करनेवाले राजन्! **पृतनाः**=(पृङ् व्यायामे, तनु विस्तारे) व्यायाम के द्वारा शक्तियों को विस्तृत करनेवाले लोगों को ही **सहस्व**=सहो, अर्थात् ('षह् मर्षणे'=show mercy) उन्हीं पर आपकी दया हो, अर्थात् राष्ट्र में अकर्मण्य लोगों के लिए स्थान न हो। राष्ट्र में सभी व्यक्ति कार्यों में लगे हों। २. **अभिमातीः**=अभिमान से भरे लोगों को, अर्थात् अन्याय मार्गों से अर्जित धन के गर्व में सब कार्य नौकरों से करानेवाले, स्वयं अभिमान के मद में चूर होने के कारण आराम का जीवन बितानेवाले लोगों को **अपास्य**=राष्ट्र से दूर (अप) अस्य=फेंक दे। अकर्मण्य धनियों का राष्ट्र में स्थान न हो। ३. **दुष्टरः**=हे सब विघ्नों व बुराइयों को तैर जानेवाले राजन्! **अरातीः**=(अ=न रातिः=देना) राष्ट्र के लिए उचित कर आदि न देनेवाले लोगों को—**तरन्**=(subdue, destroy, become master of) अभिभूत करते हुए, आप ४. **यज्ञवाहसि**=कर आदि को ठीक प्रकार से देने के द्वारा (यज्=दान) राष्ट्र-यज्ञ के चलाने में सहायक लोगों में **वर्चः**=तेजस्विता को **धाः**=स्थापित कर, अर्थात् राष्ट्र में शक्ति उन लोगों के हाथ में हो जो क्रियाशील हैं, अभिमानरहित हैं और सदा अपने देयभाग को देनेवाले हैं। ऐसा होने पर ही राष्ट्र की उन्नति होगी और राजा भी अपने 'अग्नि' नाम को सार्थक कर पाएगा।

भावार्थ—१. राष्ट्र में क्रियाशील लोगों को ही सहन किया जाए। २. अभिमान में चूर, अन्यायार्जित धन से धनी लोगों को राष्ट्र से निर्वासित कर दिया जाए (अपास्य) तथा ३. उचित कर आदि को न देनेवालों को अभिभूत किया जाए। ४. यज्ञशील लोगों की ही शक्ति को बढ़ाया जाए। धार्मिकों का ही राष्ट्र में प्रभुत्व हो, अधार्मिकों का नहीं।

ऋषिः—देववातः। देवता—रक्षोघ्नः। छन्दः—भुरिग्ब्राह्मीबृहती। स्वरः—मध्यमः॥

रक्षो-वध

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
उपाꣳशोर्वीर्येण जुहोमि हुतꣳरक्षः स्वाहा रक्षसां त्वा
वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हुतः॥३८॥

पुरोहित राज्याभिषेक के समय राजा से कहता है कि १. **त्वा**=तुझे **सवितुः देवस्य**=उस सर्वप्रेरक प्रभु की **प्रसवे**=प्रेरणा में, अर्थात् प्रभु से वेद में उपदिष्ट राजकर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए **जुहोमि**=यह सिंहासन देता हूँ। तूने इस गद्दी पर बैठकर वेदानुकूल ही शासन करना है। २. **अश्विनोः बाहुभ्याम्**=प्राणापान के (बाह प्रयत्ने) प्रयत्न के हेतु से **जुहोमि**=यह सिंहासन देता हूँ। तूने इस सिंहासन पर बैठकर अपनी प्राणशक्ति के अनुसार पूर्ण प्रयत्न से राष्ट्रोन्नति के कार्यों में लगना है। ३. **पूष्णः हस्ताभ्याम्**=पूषा के हाथों के हेतु से **जुहोमि**=तुझे यह सिंहासन सौंपता हूँ। तूने इस गद्दी पर बैठकर अपने हाथों से इस प्रकार के ही कार्य करने हैं जिनसे राष्ट्र का अधिकाधिक पोषण हो। ४. **उपांशोः**=(उपांशुः silence) मौन की **वीर्येण**=शक्ति के हेतु से **जुहोमि**=तुझे यह सिंहासन सौंपता हूँ। राजा व राष्ट्रपति को बहुत बोलनेवाला नहीं होना चाहिए। बोले कम, करे अधिक। ५. तू राष्ट्र-व्यवस्था को

इस प्रकार सुन्दरता से चलानेवाला बन कि **रक्षः**=अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवाले लोग **हतम्**=नष्ट कर दिये जाएँ। **स्वाहा**=तू इस कार्य के लिए अपनी आहुति देनेवाला हो। **त्वा**=तुझे **रक्षसाम्**=राक्षसी वृत्तिवाले लोगों के **वधाय**=वध के लिए ही इस गद्दी पर बिठाया है। ६. तेरे मुख से तो हमें यही सुनने को मिले कि **अवधिष्म रक्षः**=राक्षस का वध कर दिया गया, **अवधिष्म अमुम्**=उसको मार डाला, **असौ हतः**=अमुक राक्षस मारा गया। आपस्तम्ब ऋषि के **'प्रजापालनदण्डयुद्धानि'** ये शब्द यही कह रहे हैं कि राजा प्रजा की रक्षा करे। प्रजा की रक्षा के लिए राज्य के अन्तर्गत राक्षसों को दण्ड दे और बाह्य राक्षसों से युद्ध करे।

भावार्थ—राजा का मौलिक कर्त्तव्य 'रक्षो-वध' है। राक्षस वे हैं जो अपने रमण के लिए औरों का क्षय करें।

ऋषिः—देववातः। **देवता**—रक्षोघ्नः। **छन्दः**—अतिजगती। **स्वरः**—निषादः॥

देवों का प्रेरण

सवि॒ता त्वा॑ स॒वाना॑ꣳसुवताम॒ग्निर्गृ॒हप॑तीना॒ꣳसोमो॒ वन॒स्पती॑नाम्।
बृह॒स्पति॑र्वा॒चऽइन्द्रो॒ ज्यैष्ठ्या॑य रु॒द्रः प॒शुभ्यो॑ मि॒त्रः स॒त्यो वरु॑णो॒ धर्म॑पतीनाम्॥३९॥

१. हे राजन्! **सविता**=सबको कर्मों में प्रेरणा देनेवाला यह सूर्य **त्वा**=तुझे **सवानाम्**=यज्ञों के, उत्तमोत्तम कर्मों के लिए **सुवताम्**=प्रेरित करे। जैसे सूर्य स्वयं सब दुर्गन्ध को समाप्त करके प्राणशक्ति का प्रसार कर रहा है, एवं राजा को भी सब बुराइयों को समाप्त करके उत्तम कर्मों को प्रचारित करना है। २. **अग्निः**=अग्नि देवता **गृहपतीनाम्**=गृहपतियों के आधिपत्य में **त्वा**=तुझे **सुवताम्**=प्रेरित करे। जैसे अग्नि के बिना घर के कार्य नहीं चल पाते इसी प्रकार तू भी राज्य के लिए अपरिहार्य हो जाए। अथवा गृहपतियों में तू अग्नि के समान हो। तू इस राष्ट्ररूप गृह का उत्तम पति बन। ३. **वनस्पतीनां सोमः**=जैसे वनस्पतियों में 'सोम' श्रेष्ठ है, इसी प्रकार तू **वनस्पतीनाम्**=(वनसु=उपासना) उपासकों में श्रेष्ठ बन। ४. **वाचः**=वाणी के दृष्टिकोण से तू **बृहस्पतिः**=देवगुरु बृहस्पति के समान हो। ५. तू **ज्यैष्ठ्याय**=ज्येष्ठता के लिए **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय बन। ६. **पशुभ्यः**=ज्ञानरहित होने के कारण जो केवल (पश्यन्ति) देखते हैं, विचारते नहीं, उनके लिए **रुद्रः**=तू ज्ञान देनेवाला हो। सारे राष्ट्र में ज्ञान का प्रसार कर। ७. **मित्रः**=तू सबके साथ स्नेह करनेवाला तथा सभी को पापों से बचानेवाला (प्रमीतेः त्रायते) हो। ८. **सत्यः**=तू (सत्सु भवः) सदा सज्जनों के सङ्गवाला हो। रद्दी लोग—'अघशंस' लोग—खुशामद आदि के द्वारा तेरे कृपापात्र न बन जाएँ। तू सदा ऐसे खुशामदियों से ही घिरा न रहे। ९. **धर्मपतीनाम्**=धर्म के रक्षकों में तू **वरुणः**=वरुण के समान हो। (क) 'वरुण' द्वेष का निवारण करनेवाला है। राजा ने भी प्रजा की द्वेष-भावना को दूर करना है। (ख) वरुण 'पाशी' है—ये अनृत बोलनेवालों को पाशों में जकड़ देता है। राजा ने भी उचित दण्ड-व्यवस्था से पापों को विनष्ट करना है।

भावार्थ—राजा को मन्त्रवर्णित अपने कर्त्तव्यों का पालन करना है। उसे देवों से प्रेरणा प्राप्त करके उत्तमोत्तम व्यवस्थाओं के द्वारा राष्ट्रोन्नति को सिद्ध करना है।

ऋषिः—देववातः। **देवता**—यजमानः। **छन्दः**—स्वराड्ब्राह्मीत्रिष्टुप्। **स्वरः**—धैवतः॥

चुनाव

**इ॒मं दे॑वाऽअसप॒त्नꣳसु॑वध्वं महते क्ष॒त्राय॑ महते॒ ज्यैष्ठ्या॑य महते॑
जान॑राज्या॒येन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॑। इ॒मम॒मुष्य॑ पु॒त्रम॒मुष्यै॑ पु॒त्रम॒स्यै वि॒शऽए॒ष
वो॑ऽमी॒ राजा॒ सोमो॒ऽस्माक॑ं ब्राह्म॒णाना॒ꣳराजा॑॥४०॥**

पुरोहित चुनाव के समय एकत्र विद्वानों से कहता है कि १. हे **देवाः**=ज्ञान से दीप्त प्रजा के प्रतिनिधियो! **इमम्**=इस निर्दिश्यमान व्यक्ति को **असपत्नम्**=ऐकमत्य से, बिना किसी सपत्न rival के **सुवध्वम्**=चुनो। ऐकमत्य से चुना गया राजा ही सारी प्रजा की शक्ति को अपने में केन्द्रित कर पाता है। वही कुछ कार्य कर पाएगा। २. इसे चुनो **महते क्षत्राय**=क्षतों से त्राणरूप महान् कार्य के लिए। यह राजा राष्ट्र को सब प्रकार के आघातों से बचाएगा। ३. **महते ज्यैष्ठ्याय**=महान् बड़प्पन के लिए। यह राजा राष्ट्र को संसार में उच्च स्थान प्राप्त कराएगा। ४. **महते जानराज्याय**=महान् जनराज्य के लिए। यह राजा जनहित के दृष्टिकोण से ही राज्य करेगा। ५. **इन्द्रस्य इन्द्रियाय**=इन्द्र के वीर्य के लिए। इस राजा ने स्वयं जितेन्द्रिय बनकर शक्ति का सम्पादन किया है। यह राष्ट्र में ऐसा ही वातावरण उत्पन्न करने का ध्यान करेगा कि लोग जितेन्द्रिय बनकर शक्तिशाली बनें। एवं, यह राजा आपसे चुना जाकर (क) राष्ट्र को आघातों से बचाएगा। (ख) ज्येष्ठता प्राप्त कराएगा। (ग) शासन में लोकहित के दृष्टिकोण को अपनाएगा। (घ) और यह प्रयत्न करेगा कि लोग जितेन्द्रिय बनकर शक्तिशाली बनें। ६. अतः आप सब **इमम्**=इसे (इस नामवाले को) **अमुष्यपुत्रम्**=अमुक पिता के पुत्र को **अमुष्यै पुत्रम्**=अमुक माता के पुत्र को **अस्यै विशे**=इस प्रजा के हित के लिए चुनो। ७. **एषः**=आपसे चुना जाकर **अमी**=हे प्रजाओ! यह **वः**=आपका **राजा**=राजा है। आपने इसके आदेशों के अनुसार चलना है। **अस्माकं ब्राह्मणानाम्**=हम ब्राह्मणों का **राजा**=नियन्ता तो **सोमः**=वह सर्वज्ञ शान्त प्रभु ही है। राजा इन ब्रह्मनिष्ठ लोगों के निर्देशानुसार शासन करने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ—राजा का चुनाव सर्वसम्मति से हो तो अच्छा है। वह राष्ट्र को आघातों से बचाये, ज्येष्ठ बनाये, लोकहित के दृष्टिकोण से राज्य करे और प्रयत्न करे कि लोग इन्द्रियों के दास न होकर शक्ति-सम्पन्न बनें। ब्रह्मनिष्ठ व्यक्तियों के कथनानुसार चलें।

॥ इति नवमोऽध्यायः सम्पूर्णः॥